(खेलिए साहित्यिक अन्त्याक्षरी)

नारी लेने नहीं,
लोक में देने ही आती है,
अश्रु शेष रखकर वह उनसे,
प्रभुपद धो जाती है।

डॉ. सीता बिम्ब्रॉ

अन्त्याक्षरी-मंजूषा

अर्पित हो मेरा मनुज काय,
बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय।

आदर्शों की है निज जाति,
ज्यों मुक्ता, जननी है स्वाति।

☆ ☆ ☆

जिसमें पराई हानि है,
उस लाभ में भी हानि है।

☆ ☆ ☆

कीरति, भनिति, भूति भलि सोई,
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।

☆ ☆ ☆

यों 'रहीम' सुख होत है, उपकारी के संग।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग।

☆ ☆ ☆

लाज मरा जाता हूँ कहते,
मैं सागर के बीच पियासा।
तन के सौ सुख, सौ सुविधा में,
मेरा मन बनवास दिया सा।

☆ ☆ ☆

फूलों की रंगीन लहर पर ओ उतराने वाले!
ओ रेशमी नगर के वासी! ओ छवि के मतवाले!
सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है,
दिल्ली में रौशनी, शेष भारत में अँधियाला है!

☆ ☆ ☆

नर ही अपराधी होता है, निरपराध है नारी।

अन्त्याक्षरी-मंजूषा

(खेलिए साहित्यिक अन्त्याक्षरी)

संकलनकर्त्री

डॉ. सीता बिम्ब्रॉ

पुस्तक मन्दिर

7344/1, प्रेम नगर, शक्ति नगर

दिल्ली-110007

रहे मनोरंजन, न क्यों,
शिक्षारहित निबन्ध।
है उस कुसुम समान ही,
जिसमें नहीं सुगंध।
(मै. श. गुप्त)

प्रकाशक : पुस्तक मन्दिर
7344/1, प्रेम नगर,
शक्ति नगर,
दिल्ली–110007
दूरवाणी : 23829990

प्रथम संस्करण : 2005

मूल्य : 50.00

शब्द-संयोजन : प्रतिभा प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली–110032

मुद्रक : बी. के. ऑफसेट, शाहदरा, दिल्ली–110032

समर्पण

मेरा मुझमें कुछ नहीं,
जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते,
क्या लागत है मोर।।

अमर स्वाधीनता सेनानी
बाबा लाल सिंह जी

बंदउँ गुरुपद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रबिकर निकर।।

शहीद की माँ

मैं शहीद की माँ हूँ, मेरी आँखों,
पानी मत बरसाओ!
माँ की कोख निहाल हो गई,
सुत ने अपना धर्म निभाया!
मेरे इकलौते बेटे ने,
समरांगण में शीश चढ़ाया!

☆☆☆

माँ, मैं बूढ़ी हुई और सुत ही था,
मेरा एक सहारा
उसके बिना हुआ जीवन की,
सभी दिशाओं में अँधियारा।
लेकिन अपने जीवन से भी अधिक,
देश है मुझको प्यारा।
मैंने कहा कि आज़ादी की रक्षा में,
सर्वस्व चढ़ाओ!
मैं शहीद की माँ हूँ, मेरी आँखों पानी मत बरसाओ!

☆☆☆

स्वजनों का मत ध्यान करो तुम,
देश बड़ा है, सब नातों से।
प्यारी जन्मभूमि पीड़ित है,
क्रूर शत्रु के आघातों से। (हरिकृष्ण प्रेमी)

पूर्वाभास

"यो वै भूमा तत्सुखम्। नाल्पे सुखमस्ति।"

'उदात्त' होने में सुख है। व्यापक होने में सुख है। 'अल्प' में अर्थात् संकीर्णता में, सुख नहीं। 'ससीम' से, 'असीम' होने में, 'व्यक्ति' से 'समाज' होने में, मानव-जीवन की सार्थकता है!

कविता, मानव-जीवन के इसी परम लक्ष्य की 'पथ-प्रदर्शिका' है।

"तुम हो कौन और मैं क्या हूँ?
इसमें क्या है धरा, सुनो?
मानस-जलधि रहे चिर चुम्बित,
मेरे क्षितिज उदार बनो।"

'कामायनी' में प्रसादजी कहते हैं—

"औरों को हँसते देखो मनु,
हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो,
सबको सुखी बनाओ।"

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" रसात्मक वाक्य 'काव्य' होता है। रसात्मकता के साथ ही, जो जीवन की धारा न बदल दे, जीवन के पतझड़ को, वसंत की लहक और चहक न दे; कुछ कर गुज़रने की हिम्मत न दे; ("किंवा वे जियें ही क्यों, मरे से जो जिया करें?")

यथार्थ की दलदल से निकालकर, सुन्दर कल्पनाओं का नीड़ न दे;

स्वार्थ-भरे वातावरण की घुटन, अंतहीन वेदनाओं, व्यथाओं, पीड़ाओं और नैराश्य के अतल सागर में से निकालकर, अनवरत उद्यमशीलता की स्फूर्ति न दे; निजी वैयक्तिक कुशलक्षेम, अपना और केवल अपनों के चिन्तन से ऊपर उठाकर, दूसरों के सुख-दुख में, हँसने और रोने की संवेदना न दे, वह 'काव्य' कैसा?

आज अधिकांशत: ऐसे काव्य का ही सृजन हो रहा है। उससे न स्वस्थ मनोरंजन हो सकता है, न ही वह मन-मस्तिष्क को श्रेय मार्ग पर चलने की, कोई नई राह दिखा सकता है।

हिन्दी के अमर कवि गोस्वामी तुलसीदासजी 'लोकमंगल' को, काव्य का साध्य, स्थापित करते हुए, स्पष्ट उद्घोषणा करते हैं—

"कीरति, भनिति, भूति भलि सोई,
सुरसरि सम, सब कहँ हित होई।"

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजी कहते हैं—

"हो रहा है, जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिए कब क्या, कहाँ,
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।"

हिन्दी के मूर्धन्य आचार्य, श्री रामचन्द्र शुक्ल जी मानते हैं, "जिस प्रकार, आत्मा की मुक्तावस्था, ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार, हृदय की मुक्तावस्था 'रस दशा' कहलाती है। हृदय की इस मुक्ति की साधना के लिए, मनुष्य की वाणी, जो शब्दविधान करती आई है, उसे 'कविता' कहते हैं।"

'काव्य प्रदीप' के लेखक रामबहोरी शुक्ल जी कविता की विराट्

उद्देश्यपरकतापूर्ण परिभाषा देते हैं, "सरल और सरस शब्दों में व्यक्त, मन को मुग्ध करनेवाले, ऐसे उच्च भावों को 'कविता' कहते हैं, जिनसे हमारे विचार; देश या काल की सीमा को लाँघकर, सृष्टि के सभी पदार्थों से, तादात्म्य का अनुभव करने लगें।"

इसके विपरीत, आज की गुमराह पीढ़ी, कविता को मात्र समय काटने का एक मनोरंजक साधन एवं माध्यम मान, फ़िल्मी अन्त्याक्षरी में रस ले रही है। उसका हिन्दी के श्रेष्ठ काव्य से, कोई परिचय ही नहीं है। आख़िरकार, साहित्य का उद्देश्य भी तो, पाठकों को, मानवता की सजीव मूर्तियाँ बनाना है।

काव्य की सर्वप्रधान विशेषता है, स्मृति में बस जाना। कंठस्थ हो जाना। जो काव्य कंठ का हार बन जाएगा, वह बोलचाल की भाषा का स्तर तो ऊँचा उठाएगा ही, चरित्र-धन भी बनेगा। चरित्र का गठन करनेवाले, हिन्दी के श्रेष्ठ काव्य से, आज की पीढ़ी के, मन-मस्तिष्क को स्वस्थ बनाना; आज की महती-आवश्यकता है और साहित्यिक अन्त्याक्षरी, उसका सबसे रोचक साधन है! यह ख़ूब लोकप्रिय भी हो! यह सब विचारकर, मैं कविधर्म को निभानेवाले, हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट काव्य की 'अन्त्याक्षरी-मंजूषा', सहृदय-समाज के श्रीचरणों में, अर्पित कर रही हूँ।

श्रेष्ठ काव्य के चयन का बोध देनेवाले, संचयन की प्रेरणा देनेवाले, साहित्य के धुरंधर आचार्य एवं संस्कृति ग्रंथों के अभूतपूर्व भाष्यकार, देश की अनन्य विभूति, आजादी के महानायक मेरे गुरु पूज्य श्री बाबा लालसिंह जी, आज दुनिया में नहीं हैं परन्तु यह श्रद्धा-सुमन उन्हीं को अर्पित है।

"त्वदीय वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये।"

यह काव्य-स्फुटिका वर्तमान पीढ़ी का रुचि-परिमार्जन करके, उनकी वाणी का शृंगार बने तभी संकलन कर्तृ का श्रम सफल काम होगा। जिन कवियों के कविता-मौक्तिक चुनकर, अन्त्याक्षरी की यह माला तैयार हुई

है, वे सब नमन-योग्य हैं, अभिवन्दनीय हैं! मैं उनकी आभारी हूँ। उनकी कविताएँ घर-घर पहुँचकर, बच्चों का नैतिक; उत्थान करें।

अंत में, मैं श्री राजवीर भाई की अतीव धन्यवादी हूँ, जिन्होंने गत आठ वर्षों से संकलित पड़ी, इस काव्य-स्फुटिका को, भरपूर लग्न एवं परिश्रम से पुस्तकाकार देकर, मेरी मनोकामना पूर्ण कर दी!

चिरंजीवी हो, सीमा बिटिया, उसके हर संभव सहयोग के कारण, उस पर पूरा विश्वास है कि अन्य पुस्तकों को पूरा करने में भी वह इसी प्रकार सहयोग देगी।

अतीव प्रतिभाशाली, मेरी बाल कलाकार, कु. सीमा राणा का आभार व्यक्त करना भी मैं भूल नहीं सकती, जिसने पुस्तक के आवरण पृष्ठ को सुन्दर एवं अर्थपूर्ण बनाने के लिए, अतीव मोहक चित्र बनाकर दिया है तथा पुस्तक में हर रिक्ति को भरने के लिए, बहुत सारे छोटे-छोटे चित्र भी बना दिए हैं। वह सत्कीर्ति-गामिनी बने, प्रभु मेरी यह अभिलाषा पूर्ण करें!

दीपावली के महापर्व, पूज्य बाबाजी की जयंती पर, उनकी पावन स्मृति में, एक प्रदीप प्रज्वलित कर रही हूँ। आशा है, सहृदय समाज, आतिशबाज़ी का प्रदूषण फैलाने का वारण करके, अपने बच्चों के हाथ में, 'अंत्याक्षरी-मंजूषा' दे, कवितांशों की इस लघु-प्रदीपमालिका को ज्योतित करेगा!

ज्ञान-दीपों को जलाकर, जाग्रत-जन, राम के राज्याभिषेक का समारोह मना, मेरा उत्साहवर्द्धन करेगा तो मेरा श्रम सार्थक हो जाएगा!

—सीता बिम्ब्रॉ

अ

1

अब जागो जीवन के प्रभात।
रजनी की लाज समेटो तो,
कलरव से उठकर भेंटों तो,
अरुणांचल में चल रही बात।

(प्रसाद)

2

अरे, कहीं देखा है तुमने, मुझे प्यार करनेवाले को ?
मेरी आँखों में आकर फिर, आँसू बन ढरनेवाले को ?

(प्रसाद)

3

अपनी सुध ये कुलस्त्रियाँ लेती नहीं,
पुरुष न लें तो उपालम्भ देती नहीं। (मै.श. गुप्त)

4

अरी सुरभि, जा लौट जा, अपने अंग सहेज।
तू है फूलों में पली, यह काँटों की सेज। (वही)

5

अलक्ष की बात अलक्ष जानें,
समक्ष को ही क्यों न मानें ?
रहे वहीं प्लावित प्रीतिधारा,
आदर्श ही ईश्वर है हमारा। (वही)

6

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी। (वही)

7

अवधि शिला का उर पर था गुरु भार।
तिल तिल काट रही थी दृग जलधार। (वही)

8

अच्युतं केशवं रामनारायणणम्।
कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभम्।
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे।

9

अतुलित बलधामं हेमशैलाभदेहं,
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि। (तुलसी)

10

अरी वरुणा की शांत कछार।
तपस्वी के विराग की प्यार। (प्रसाद)

11

अबला का अपमान, सभी बलवानों का है।
सती-धर्म का मान, मुकुट सब मानों का है।
(मै. श. गुप्त)

12

अब कठोर हो वज्रादपि, ओ कुसुमादपि सुकुमारी।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी। (वही)

13

अधिकार खोकर बैठ रहना; यह महादुष्कर्म है।
न्यायार्थ अपने बंधु को भी, दंड देना धर्म है। (वही)

14

अधर धरत हरि के परत, ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष-सी होति।।

(बिहारी)

15

अति अगाध अति ओथरे, नदी कूप सर बाय।
सो ताकों सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय।।

(बिहारी)

16

अनुचित बचन न मानिए, जदपि गुरायसु गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ि।।

17

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम।।

18

ओ री मानस की गहराई।
तू सुप्त, शांत, कितनी शीतल,
निर्वात मेघ ज्यों पूरित जल।

19

अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
'रहिमन' ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि।

20

अच्छा बुरा बस नाम ही, रहता सदा इस लोक में,
वह धन्य है, जिसके लिए हों, लीन सज्जन शोक में।

21

अपनी संस्कृति का अभिमान,
करो सदा हिन्दू-सन्तान।
सब आदर्शों की वह खान,
नररत्नत्व करेगी दान।

22

अरे हंस या नगर में, जैयो आप विचारि।
कागनि सौं जिन प्रीति करि, कोकिल दई विडारि।।

(बिहारी)

23

अभागिन? देख, कोई क्या कहेगा?
यही चौदह बरस बन में रहेगा? (मै. श. गुप्त)

24

अवधेस के द्वारें सकारें गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-विमोचन को, ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक से।
'तुलसी' मनरंजन रंजित अंजन, नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै, नवनील सरोरुह से बिकसे।

25

अकरुण वसुधा से एक झलक,
वह स्मित मिलने को रहा ललक।
जिसके प्रकाश में सकल कर्म,
बनते कोमल, उज्ज्वल, उदार।
धीरे से वह उठता पुकार,
मुझको न मिला रे कभी प्यार। (प्रसाद)

26

अपने दुख-सुख से पुलकित,
यह मूर्त विश्व सचराचर।
चिति का विराट वपु मंगल,
यह सत्य सतत, चिर सुन्दर। (प्रसाद)

27

असुर पुलोम-पुत्री इन्द्राणी बने जहाँ,
नर भी क्यों इन्द्र नहीं बन सकता वहाँ?
कौन कहता है, नहीं आज सुर-नेता मैं?
पाकशासनासन का मूल्य दाता, क्रेता मैं।
(मै. श. गुप्त)

28

अच्छा! इन्द्रपद का नहीं हूँ अधिकारी मैं?
सेवक-समान देव-शासनानुचारी मैं?
स्वर्ग राज्य तो क्या, अपवर्ग भी है एक पण्य,
मूल्य गिन दे जो धनी, ले ले वह आप गण्य!
(वही)

29

अगर शत्रु को मान सकें हम, अपने मन का मीत।
तो उसको हम, बड़ी सरलता, से सकते हैं, जीत। (वही)

30

अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नैंकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ, झझकैं कपटी जे निसांक नहीं।
'घनआनंद' प्यारे सुजान सुनौ, यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन-सी पाटी पढ़े हौ लला, मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं।

31

असुभ बेष भूषन धरें, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं।।

(तुलसी)

32

अबला कच भूषन भूरि छुधा।
धनहीन दुखी ममता बहुधा।
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता।
मति थोरि कठोरि, न कोमलता।।

33

अगर शत्रु को मान सकें हम,
अपने मन का मीत।
तो उसको हम बड़ी सरलता से,
सकते हैं जीत।

34

अरे राम! कैसे हम झेलें, अपनी लज्जा, उसका शोक?
गया हमारे ही पापों से, अपना राष्ट्रपिता परलोक।

(मै. श. गुप्त)

35

अहिंसा–दूत बनकर के,
कोई भारत में आया था,
भारत की पुण्यभूमि पर,
अमर गायन सुनाया था।

☆☆☆

हुई थी ज़िंदगी दूभर
पतन के गर्त में गिरकर,
दया का देवता बनकर,
हमें उसने उठाया था।

आ

1

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारि-विन्दु-फल स्वास्थ्य शुचि फलती हूँ,
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।
तनु-लता-सफलता-स्वादु आज ही आया,
मेरी कुटिया में राजभवन मनभाया।

(मै. श. गुप्त)

2

आह वेदना मिली विदाई!
मैंने भ्रमवश जीवन संचित,
मधुकरियों की भीख लुटाई। (प्रसाद)

3

आँखों से अलख जगाने को,
यह आज भैरवी आई है।
ऊषा सी अ ाँखों में कितनी,
मादकता भरी ललाई है। (वही)

4

आराध्य-युग्म के सोने पर,
निस्तब्ध निशा के होने पर।

तुम याद करोगे मुझे कभी,
तो बस फिर मैं पा चुकी सभी।

(मै. श. गुप्त)

5

आशा, अवलम्ब दायिका है,
क्या ही कल गीत-गायिका है।
वह आप क्यों न नाता तोड़े,
पर कौन है कि उसको छोड़े?

(मै. श. गुप्त)

6

आदर घटै नरेस ढिग, बसे रहै कछु नाहिं।
जो रहीम कोटिन मिलै, धिक जीवन जग माहिं।

7

आप न काहू काम के, डार, पात, फल, फूल।
औरन को रोकत फिरै, रहिमन पेड़ बबूल।

8

आओ, प्रिय! भव में, भाव-विभाव भरें हम,
डूबेंगे नहीं कदापि, तरें न तरें हम।
कैवल्य काम भी काम, स्वधर्म धरें हम,
संसार—हेतु शत बार सहर्ष मरें हम।
तुम, सुनो क्षेम से, प्रेम-गीत मैं गाऊँ,
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

(मै. श. गुप्त)

9

आँखें अति सीतल भईं,
दीन्हों ताप निवारि।
क्यों सखि, पीतम को लखे?
ना सखि, ससिहिं निहारि।

10

आर्य, छाती फट रही है हाय!
राज्य भी अब तो बना व्यवसाय।
हम उसे लें, बेचकर भी धर्म,
अतुल कुल में आज ऐसा कर्म!
भ्रातृ-निष्कासन, पिता का घात,
हो चुके दो-दो जहाँ उत्पात,
और दो हों मातृवध, गृहदाह!
बस यही, इस चित्त की, अब चाह!

(वही)

11

आनन्द हमारे ही अधीन रहता है,
तब भी विषाद नरलोक व्यर्थ सहता है।
करके अपना कर्तव्य, रहो संतोषी,
फिर सफल हो कि तुम विफल, न होगे दोषी।

(वही)

12

आँखों में प्रिय मूर्ति थी, भूले थे सब भोग।
हुआ योग से भी अधिक, उसका विषम वियोग।

13

आठ पहर, चौंसठ घड़ी, स्वामी का ही ध्यान।
छूट गया पीछे स्वयं, उससे आत्मज्ञान।

14

आए हैं सो जाएँगे, राजा, रंक, फ़कीर।
इक सिंहासन चढ़ि चले, एक बँधे ज़ंजीर।।

(कबीर)

15

आबाल-वृद्ध नारी-नर में,
क्या प्रात-प्रात, क्या शाम-शाम!
तुलसी तुम गूँज रहे रह-रह,
गृह-गृह में बनकर राम-नाम!

(तुलसीदास : सोहनलाल द्विवेदी)

16

आज कितनी शताब्दियों बाद,
उठी ध्वंसों में वह झंकार।
प्रतिध्वनि जिसकी सुनें दिगन्त,
विश्ववाणी का बने विहार।। (प्रसाद)

17

आवहु, सब मिलि रोवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।। (भारतेंदु)

18

आज मैं अपने राम को रिझाऊँ।
 री सखियो, कर्म में राम को पाऊँ।।

19

आहुतियाँ देके इस नहुष अभाग को;
दूध ऋषियों ने ही पिलाया काल-नाग को।
अच्छा तो उठाके वही कंधों पर शिविका,
लावें उस नर को बनाके वर दिवि का!

20

और यह क्या तुम सुनते नहीं,
विधाता का मंगल वरदान।
"शक्तिशाली हो, विजयी बनो",
विश्व में गूँज रहा जयगान।

21

आ गई गांधी-जयंती, हम सभी उत्सव मनाएँ।
आज अपना लें हृदय से, गुण सभी हम सब तुम्हारे।
जो तुम्हें आदर्श प्रिय थे, बस वही अब हों हमारे।
देश की इस पुण्यतिथि पर, फूल श्रद्धा के चढ़ाएँ।
आ गई गांधी-जयंती, हम सभी उत्सव मनाएँ।

☆☆☆

प्रेम से जीतें जगत् को, विश्व को परिवार मानें,
हम अहिंसा, सत्य को ही, ज़िंदगी का ध्येय जानें।
चरण चिह्नों पर तुम्हारे, हम चलें, जग को चलाएँ।
आ गई गांधी-जयंती, हम सभी उत्सव मनाएँ।

☆☆☆

जो मिली स्वाधीनता तुमसे, उसे जाने न देंगे।
हम किसी भी शत्रु को निज, भूमि में आने न देंगे।

मुक्त कंठों से यही प्रण, अखिल दुनिया को सुनाएँ।
आ गई गांधी-जयंती, हम सभी उत्सव मनाएँ।

22

आओ वीरो, आओ, आओ,
कर्मवेदि पर बलि-बलि जाओ।
बापू का प्रिय पथ अपनाओ,
तब होंगे प्रण पूर्ण हमारे।
अमर हुए हैं, बापू प्यारे।

23

आओ, नन्हें साथी आओ,
बापू के गुण गाएँ।
उन्हें याद हम करें हमेशा,
सादर शीश झुकाएँ।

24

आवत गारी एक है, उलटत होत अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिए, वही एक की एक।।

25

आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं।

26

आया था किस काम को, क्यूँ सोया चादर तान रे,
सुरत सँभाल अब गाफ़िला तू, अपना आप पिछान रे।

27

आ, हम दोनों चलें, मार्ग लेकर मनमाना,
जहाँ न धन-जन और न कोई चौकी-थाना।

कंदमूल फल खायँ, पियें झरनों का पानी,
नया प्रेम का राज्य रचें, हम राजा-रानी।

28

आओ प्यारे वीरो आओ,
देश-धर्म पर बलि-बलि जाओ।
एक साथ सब मिलकर गाओ,
प्यारा भारत देश हमारा। झंडा ऊँचा...

(श्यामलाल पार्षद)

29

ओ मानवता के सिंधु-मंथन के सुधा-कलश,
अब कितनी सदियों बाद, धरा पर आओगे?

30

आज मैं अपने राम को रिझाऊँ।
री सखियो, चरखे में राम को ध्याऊँ,
री सखियो, कर्म में राम को पाऊँ।

31

आरति श्री रामायण जी की,
कीरति कलित ललित सिय पी की।

32

आली! म्हाने लागे बृन्दाबन नीको।
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा।
दरसण गोविंद जी को।
निरमल नीर बहत जमना में,
भोजन दूध दही को।

रतन सिंघासण आप बिराजे,
मुकुट धर्‌यो तुलसी को।
कुंजन कुंजन फिरत राधिका,
सबद सुणत मुरली को।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
भजन बिना नर फीको।

33

आगे सोहै साँवरो, कुँवर गोरो पाछे-पाछे,
आछे मुनिबेष धरे, लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषासन बसन बनही के कटि,
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं।
साथ निसिनाथमुखी पाथनाथ नंदिनी सी,
तुसली बिलौकैं, चित लाई लेत संग हैं।
आनंद उमंग मन, जोबन उमंग तन,
रूप की उमंग, उभगत अंग अंग हैं।

34

आज विश्व में विजय पताका माँ मुझको फहराने दो,
हम हिन्दू हैं, हिन्दी भाषा, यह संदेश सुनाने दो!

1

इस सोते संसार बीच, जगकर सजकर रजनी बाले,
कहाँ बेचने ले जाती हो, ये गजरे तारोंवाले?

2

इस अर्पण में कुछ और नहीं, केवल उत्सर्ग छलकता है।
मैं दे दूँ, और न फिर कुछ लूँ, इतना ही सरल झलकता है।

3

इन प्यासी तलवारों से,
इनकी पैनी धारों से।
निर्दयता की मारों से,
उन हिंसक हुंकारों से।
नतमस्तक आज हुआ कलिंग।

4

इस नील विषाद गगन में,
सुख चपला-सा, दुख-घन में।
चिर विरह नवीन मिलन में,
इस मरु-मरीचिका वन में।
उलझा है, चंचल मन-कुरंग।
जलता है, जीवन पतंग।

5

इक भीजे चहले परे, बूड़े बहे हजार।
कितो न औगुन जग करत, नै वै चढ़ती बार।।

6

इहिं आस अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वै है फेरि बसंत ऋतु, इन डारन वै फूल।।

7

इसके अनुरूप कहैं किसको,
वह कौन सुदेश समुन्नत है?
समझैं सुरलोक समान इसे,
उनका अनुमान असंगत है।
कवि कोविद वृन्द बखान रहे,
सबका अनुभूत यही मत है।
उपमान विहीन रचा विधि ने,
बस भारत के सम भारत है।

8

इतनी बड़ी पुरी में,
क्या ऐसी दुखिनी नहीं कोई?
जिसकी सखी बनूँ मैं,
जो मुझ-सी हो, हँसी-रोई?

9

इकबाल कोई महरम, अपना नहीं जहाँ में,
मालूम क्या किसी को, दर्दे निहाँ हमारा।

10

इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदंभ पर, रघुकुल राज है।
पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर, राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृगझुंड पर,
'भूषन' वितुंड पर, जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ-वंश पर, सेर सिवराज है।

11

इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

(बच्चन—'मधुबाला')

12

इतिहास पड़ा था बद्ध रुद्ध,
तुमने उसमें स्वगति भर दी।
विस्मृता स्वगुण मानवता में,
नवगति भर दी, सन्मति भर दी।
युग शिथिल पड़ा था, थकित स्थिर,
तुमने उसको झकझोर दिया।
सभ्यता-संस्कृति की काली
रातों को, नूतन भोर दिया।
तुम शीतल शशि, ज्योत्स्ना मधुर,
तुम दिनकर के संतप्त धाम।
बापू! तुम जीवन के कवि थे! (तन्मय बुखारिया)

1

ईश के इंगित के अनुसार।
हुआ करते हैं, सब व्यापार।

2

ईश्वर का जीव से यही है एक कहना,
तू निश्चिन्त होके कहीं बैठ नहीं रहना।

3

ईस भजन सारथी सुजाना।
बिरति चर्म, संतोष कृपाना।

4

ईश्वर के आगे जब भी हम, अपने को पाएँगे,
तो बस अंतर के भावों से, पहचाने जाएँगे।

(निरंकार देव 'सेवक')

5

ईश्वर से भी जो न डरे,
हितुओं की ही हँसी करे,
वह कृतघ्न संसार हरे!
कैसे उबरे और तरे!

उ

1

उदित उदयगिरि-मंच पर, रघुबर बाल-पतंग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन-भृंग।

2

उऋण होना कठिन है, तात-ऋण से,
अधिक मुझको नहीं है, राज्य-तृण से।

3

उषा सुनहले तीर बरसती,
जय-लक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल, रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई।

4

उस दिन जब जीवन के पथ में,
छिन्न पात्र ले कंपित कर में,
मधुभिक्षा की रटन अधर में,
इस अनजाने निकट नगर में,
आ पहुँचा था एक अकिंचन।

5

उसके आशय की थाह मिलेगी किसको?
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको।

6

उपकरण से क्या, शक्ति में ही,
सिद्धि रहती सर्वदा।

7

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं विरति।
पावहिं मोह विमूढ़, जे हरि विमुख न धर्म रति।।

8

उन्हें समर्पित कर दिये, यदि मैंने सब काम,
तो आवेंगे एक दिन, निश्चय मेरे राम।
यहीं, इसी आँगन में।

9

उनका यह कुंज-कुटीर वही,
झड़ता उड़ अंशु-अबीर जहाँ,
अलि, कोकिल, कीर, शिखी सब हैं,
सुन चातक की रट, "पीव कहाँ?"
अब भी सब साज समाज वही,
तब भी सब आज अनाथ यहाँ,
सखि, जा पहुँचे सुध-संग कहीं,
यह अंध-सुगंध समीर वहाँ!

10

उस काल दोनों में परस्पर, युद्ध वह ऐसा हुआ,
है योग्य बस कहना यही, अद्भुत वही वैसा हुआ।

11

उत्तम, मध्यम, अधम गति,
पाहन, सिकता, पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की,
बैर बितिक्रम जानि।

12

उज्ज्वल वरदान चेतना का,
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।
जिसमें अनन्त अभिलाषा के,
सपने सब जगते रहते हैं।

13

उसी उदार की कथा, सरस्वती बखानती,
उसी उदार से धरा, कृतार्थ-भाव मानती।
उसी उदार की सदा, सजीव कीर्ति गूँजती,
तथा उसी उदार को, समस्त सृष्टि पूजती।
अखण्ड आत्मभाव जो, असीम विश्व में भरे,
वही मनुष्य है कि जो, मनुष्य के लिए मरे।

14

उसके मधु सुहाग का दर्पण,
जिसमें देखा था उसने,
बस एक बार बिंबित अपना जीवनधन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा—वह ध्रुवतारा—

दूर हुआ वह बहा रहा है,
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा!

15

उठ जाग मुसाफिर भोर भई,
अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो सोवत है, सो खोवत है,
जो जागत है, सो पावत है।
उठ नींद से अँखियाँ खोल ज़रा,
और अपने प्रभु से ध्यान लगा।
यह प्रीत करन की रीत नहीं,
प्रभु जागत है, तू सोवत है।

16

उद्यम है तो सुलभ सम्पदाएँ हैं सारी।

17

उसे बचावे कौन, स्वयं जो मृत्यु बुलावे।

ऊ

1

ऊँचे रहे स्वर्ग, नीचे भूमि को क्या टोटा है?
मस्तक से हृदय कभी, क्या कुछ छोटा है?

2

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंदमूल भोग करें, कंदमूल भोग करें,
तीन बेर खातीं ते वै तीन बार खाती हैं।
भूषन सिथिल अंग, भूखन सिथिल अंग,
विजन डुलातीं ते वै विजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं।

3

ऊधो मन नाहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को अवराधे ईस।।

4

ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ।
अरज-करत भयो भोर।

5

ऊषा उदास आती है, मुख पीला ले जाती है,
बन मधु पिंगल संध्या सुरंग।

6

ऊँचे-ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच राखूँ बारी।
साँवरिया के दरसन पाऊँ, पहिर कुसुम्बी सारी।।

7

ऊँचा है, सबसे ऊँचा, जिसका भाल हिमालय,
पहले पहल उतरा जहाँ, अंबर से उजाला।
प्यारी जन्मभूमि मेरी प्यारी मातृभूमि।

8

ऊधो, मोहे ब्रज बिसरत नाहीं।
हंससुता की सुंदर कगरी,
अरु तरुवर की छाँहीं।

9

ऊधो मोहे संत सदा अति प्यारे।
जाकी महिमा बेद उचारे।
शुक मुनि कहत कहत पचि हारे।

1

एक मनमोहन तो बसि कै उजार्‌यौ मोहि,
हिये मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना।

2

एकै साधे, सब सधें, सब साधें, सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिबो, फूलहिं फलहिं अघाय।।

3

ए रहीम दर-दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छाँड़ि दो, वे रहीम अब नाहिं।।

4

एक राज्य न हो, बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।

5

एक नहीं, दो-दो मात्राएँ,
नर से भारी नारी।

6

एक बार तो देख अरे जग, मेरी डंडा बेड़ी;
एक बार तो देख, कट गई है यह मेरी एड़ी,
टेढ़ी-मेढ़ी यह मदमाती, मेरी चाल निहार!
झन-झन-झन-झन करता है हम मस्तों का संसार!

गुर्राते झन्नाते फिरते हैं ये मेरे शेर!
ओ जग, ज़रा देख तो, हैं ये, कैसे विकट दिलेर!

7

एक कबूतर देख हाथ में, पूछा कहाँ अपर है?
उसने कहा अपर कैसा? उड़ है गया सपर है।

8

एक तरु के विविध सुमनों-से खिले,
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी सभी,
बाह्यभोगी, आन्तरिक योगी सभी।

(मै. श. गुप्त)

9

एक भरोसो, एक बल, एक आस-बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास।।

10

एक दीपक-किरण-कण हूँ।
धूम्र जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं।

(रामकुमार)

11

एक लालसा मन महँ धारौं।
बंसीबट, कालिंदी तट, नटनागर नित्य निहारौं।

(हनुमानप्रसाद पोद्दार 'भाई जी')

ऐ

1

ऐं, लक्ष्मण तो रोता है,
ईश्वर, यह क्या होता है?

2

ऐसा टूटेगा मोह, एक दिन के भीतर,
इस राग-रंग की पूरी बर्बादी होगी।
जब तक न देश के घर-घर में रेशम होगा,
तब तक दिल्ली के भी तन पर खादी होगी।

(दिल्ली सन् 1954 दिनकर)

3

ऐल फैल खैलभैल, खलक में गैल गैल,
गजन की ठेल पेल, सैल उलसत है।

4

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति सुरसरिता, आस करत ओसकन की।

5

ऐ मुसाफिर! कूच का सामान कर,
इस जहाँ में है बसेरा चंद रोज।

6

ऐ आबेरूदे गंगा, वह दिन है याद तुझको,
उतरा तेरे किनारे, जब कारवाँ हमारा।
सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोसताँ हमारा।

7

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर,
राम सरिस कोउ नाहीं।

8

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आप खोय।
औरन को शीतल करे, आपहिं शीतल होय।

9

ऐ मेरे रब! तू, पाप-हरैया, संकट में किरपा का करैया।
मेरे रहीम! रहम कर साहेब! मेरे करीम! करम कर साहब।।
मुझ पापी का पाप छुड़ाओ, डूबत नैया पार लगाओ।
झाँझरि नाव, पतवार पुराना, यह डर मोरे हिये समाना।।
(करीमबख़्श)

10

ऐसा सुनता, उस पार, प्रिये, ये साधन भी छिन जाएँगे;
तब मानव की चेतनता का आधार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो……

क

1

कीरति, भनिति, भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।

2

करते हैं जब उपकार किसी का हम कुछ,
होता है तब संतोष, हमें क्या कम कुछ?

3

क्या देवत्व छोड़ें हम और नर हों वही?
खंड-खंड जिससे हुई है महती मही?
जो न एक सार्वभौम, भाषा भी बना सका,
जान सका पर की, न अपनी जना सका।

4

कोमल है बस प्रेम, कठिन कर्तव्य है।
कौन दिव्य है, कौन न जाने भव्य है?

5

कबीर मन निर्मल भया, जैसा गंगा नीर।
पाछें पाछें हरि फिरें, कहत कबीर कबीर।

6

केसौ कहि कहि कूकिए, मत सोइए असरार।
राति दिवस कै कूकणें, मत कबहूँ लगे पुकार।

7

कंकण क्वणित रणित नूपुर थे,
हिलते थे, छाती पर हार।
मुखरित था, कलरव गीतों में,
स्वर लय का होता अभिसार।

8

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि,
कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही,
मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही।

9

किस भाषा में करूँ आज मैं देव तुम्हारा वन्दन!
शब्द नहीं कर पाते, समुचित सम्मान तुम्हारा,
छन्द मंद पड़ जाते हैं, रुक जाती है स्वरधारा,
भाव मूक हो जाते हैं, गाते गुणगान तुम्हारा।
उठ-उठकर झुक-झुक जाता,
मेरी वीणा का कम्पन।
किस भाषा में करूँ आज मैं देव तुम्हारा वन्दन!

10

करे न यदि कोई निज कर्म,
तो क्या हम भी तजें स्वधर्म?

11

कौन करे, दासों को मित्र?
वहाँ चाहिए तुल्य चरित्र।

12

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की पँचरंगी कर दूर।
एक रंग, तन, मन, वाणी में, भर ले तू भरपूर।
प्रेम प्रसार, न भूल भलाई, वैर-विरोध बिसार।
भक्तिभाव से भज शंकर को, धर्म, दया उर धार।

13

कदली, सीप, भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन।

14

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय।

15

कहु रहीम कैसे निभे, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग।

16

कबको टेरत दीन है, होत न स्याम सहाय।
तुमहूँ लागी जगत गुरु, जगनायक जग-बाय।

17

कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सों बैर।
रहिमन बसि सागर विषे, करत मगर सों बैर।

18

कौन भाँति रहिहै बिरद, अब देखिबी मुरारि।
बीधे मो सों आन कै, गीधे गीधहिं तार।

19

क्या पाप की ही जीत होती,
हारता है पुण्य ही?

20

कृतघन कबहूँ न मानहीं, कोटि करै जो कोय।
सर्बस आगै राखिए, तऊ न अपनो होय।।
तऊ न अपनो होय, भले की भली न मानै।
काम काढ़ि चुप रहै, फेरि तिहिं नहिं पहिचानै।।
कह गिरिधर कविराय, रहत नित हीं निर्भय मन।
मित्र-शत्रु सब एक, दाम के लालच कृतघन।।

21

कहा करौं बैकुंठ लै, कल्पबृच्छ की छाँह।
'रहिमन' ढाक सुहावनो, जो गल पीतम बाँह।।

22

कोटि जतन कोऊ करे, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचो चढ़ै, तऊ नीच को नीच।।

23

कहै इहै सब स्रुति सुमृति, इहै सयाने लोग।
तीन दबावत निबल ही, पातक, राजा, रोग।।

24

कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौराये जग, या पाये बौराय।।

25

"कोई निरपराध को मारे,
तो क्यों अन्य उसे न उबारे।
रक्षक पर भक्षक को वारे,
न्याय दया का दानी।"
"न्याय दया का दानी?
तूने गुनी कहानी।"

26

काव्य में सुंदर बिजली-सी, बिजली में चपल चमक सी,
आँखों में काली पुतली-सी, पुतली की श्याम झलक सी,
प्रतिमा में सजीवता सी, बस गई सुछवि आँखों में,
थी एक लकीर हृदय में, जो अलग रही लाखों में।

27

किंशुक कुसुम जानकर झपटा,
भौंरा शुक की लाल चोंच पर।
तोते ने निज ठौर चलाई,
जामुन का फल उसे समझकर।

28

केशव केसनि अस करी, जस बैरिहु न कराहिं।
चन्द्रवदनि, मृगलोचनी, बाबा कहि-कहि जाहिं।।

29

कागर कीर ज्यों भूषन चीर, सरीर लस्यो तजि नीरु ज्यों काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै, सनमानि सुभायँ सनेह सगाई।

संग सुभामिनी भाई भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन राम चले तजि, बाप को राजु, बटाऊ की नाईं।

30

कागद पै लिखत न बनत, मुख पै कह्यो न जात।
कहि है सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात।।

(बिहारी)

31

कहा ऊर्मिला ने-हे मन! तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।
आज स्वार्थ है, त्यागभरा! हो अनुराग विराग भरा!
तू विकार से पूर्ण न हो, शोक भार से चूर्ण न हो!
भ्रातृ-स्नेह-सुधा बरसे, भू पर स्वर्ग-भाव सरसे!

32

कण्ठ-कण्ठ गा उठा,
शून्य-शून्य छा उठा—
सत्य काम सत्य है,
राम नाम सत्य है!

33

कहता है कौन कि भाग्य ठगा है मेरा?
वह सुना हुआ भय, दूर भगा है मेरा।
कुछ करने में अब हाथ लगा है मेरा,
वन में ही तो गार्हस्थ्य जगा है मेरा।
वह वधू जानकी बनी आज यह जाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मनभाया।

34

कहते आते थे, यही अभी नरदेही,
"माता न कुमाता, पुत्र-कुपुत्र भले ही।"
अब कहें सभी यह हाय! विरुद्ध विधाता—
"है पुत्र-पुत्र ही, रहे कुमाता माता।"

35

करने में निज कर्तव्य कुयश भी यश है।

36

क्या ताना है, मोहक वितान मायापुर का!
बस फूल-फूल रेशम-रेशम फैलाया है;
लगता है, कोई स्वर्ग खमंडल से उड़कर,
मदिरा में माता हुआ, भूमि पर आया है।
(दिनकर)

37

कबिरा जंत्र न बाजई, टूट गए सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावनहार।।

38

किंवा वे जियें ही क्यों, मरे से जो जिया करें।

39

कहो कौन हो दमयंती-सी, तुम तरु के नीचे सोई?
हाय! तुम्हें भी त्याग (छोड़) गया क्या, अलि! नल-सा निष्ठुर कोई?

40

काम, कोह, मद, मान न मोहा। लोभ न छोभ न, राग न, द्रोहा।
जिन्ह कें कपट, दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया।।

41

कर्मयज्ञ से जीवन के सपनों का स्वर्ग मिलेगा,
इसी विपिन में मानस की, आशा का कुसुम खिलेगा।

42

किस तरफ़ जाना हमें था, किस तरफ़ जाने लगे।
भावना ले त्याग की हम, थे बने सेवाव्रती,
किन्तु सत्ता प्राप्त कर हम, होश बिसराने लगे।

43

कागा यह तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मास।
दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस।।

44

कितनी सदियों के पुण्य फले,
तब तुम आए।
धरती के जागे भाग,
मुक्ति के घन छाए।

45

करमन की गति न्यारी ऊधो।
सब नदियाँ जल भर-भर रहियाँ,
सागर केहि बिधि खारी ऊधो।

46

करम गति टारे नाहिं टरी।
गुरु वसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, सोध के लगन धरी।

47

केहि–केहि समुझावौं सब जग अंधा।
इक दुइ होइ उन्हैं समुझावौं, सबहिं भुलाना पेट के धंधा।

48

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें, संत सुभाव गहौंगो।

49

क्योंकर हो मेरे मन–मानिक की रक्षा ओह!
मार्ग के लुटेरे काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह।
किन्तु मैं बढ़ूँगा राम,
लेकर तुम्हारा नाम;
रक्खो बस तात, तुम थोड़ी क्षमा, थोड़ा छोह!

50

"कहते हैं, स्वर्ग नहीं मिलता बिना मरे,
पाया इसी देह से है, तुमने, इसे हरे।"
नम्र हुआ नहुष सलज्ज मुस्कान में,
"त्रुटि तो नहीं थी यही मेरे मूल्य दान में?"

51

कुछ न करूँ मैं, और कोई सब कर दे,
लाके इष्ट वस्तु, मेरे आगे बस धर दे।
ऐसा क्लीव कापुरुष, सबका सहेगा शाप,
भोग क्या करेगा, जो न अर्जन करेगा आप?

52

क्या देवत्व छोड़ें हम, और नर हों वही,
खंड-खंड जिससे हुई है महती मही?
जो न एक सार्वभौम भाषा भी बना सका,
जान सका पर की, न अपनी जना सका।

53

कहतीं मनोरथ कहाँ हैं स्त्रियाँ मन का?
आप पूर्ण करने में पौरुष है जन का।

54

"कठिन कठोर सत्य! तो भी शिरोधार्य है,
शांत हों महर्षि, मुझे शाप अंगी कार्य है।"

55

काल गतिशील, मुझे लेके नहीं बैठेगा,
किन्तु उस जीवन में, विष घुस पैठेगा।
तो भी खोजने का कुछ कष्ट जो उठावेंगे,
विष में भी अमृत छिपा वे कृती पावेंगे।

56

क्या अमरों का लोक मिलेगा, तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे, यह मेरा मिटने का अधिकार!

57

कर्मभूमि है निखिल महीतल,
जब तक नर की काया।
जब तक है, जीवन के अणु-अणु,
में, कर्तव्य समाया।

कर्म-धर्म को छोड़, मनुज,
कैसे निज सुख पाएगा?
कर्म रहेगा साथ, भाग वह,
जहाँ कहीं जाएगा!

58

क्या कर लेंगी ये हथकड़ियाँ, बेड़ी औ जंजीर।
जिसमें जितनी शक्ति सत्य की, वह उतना ही वीर।।

59

कलिकाल बिहाल किए मनुजा,
नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा।
नहिं तोष, बिचार न सीतलता,
सब जाति कुजाति भए मँगता।

60

कौन अम्बर से उतरकर,
आ गया, भू को हँसाने?
जग भँवर में फँस गया,
पतवार टूटी, धैर्य छूटा,
कौन लहरों से निकल तब,
आ गया नैटया चलाने?

(हरिकृष्ण प्रेमी : गांधीजी का शुभागमन)

ख

1

खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी।
जरहिं सदा पर संपति देखी।।
जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई।
हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई।।

2

खीरा कौ सिर काटिकै, मलियत लौन लगाय।
'रहिमन' करुए मुखन कौ, चहियतु यहै सजाय।।

3

खरच बढ्यौ, उद्यम घट्यौ, नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिये, थोरे जल कौ मीन।।

4

खगवृन्द सोता है अतः कलकल नहीं होता वहाँ।
बस मंद मारुत का गमन ही, मौन है खोता वहाँ।।

5

खोजती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम,
चाहती हैं एक तुम-सा पात्र हम;
आन्तरिक सुख-दुख हम जिसमें धरें,
और निज भव-भार यों हलका करें।।

(मै. श. गुप्त)

6

खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अंग।
गज को कहा न्हवाए सरिता, बहुरि धरै खहि छंग।।
छाँड़ि मन, हरि विमुखन को संग।

7

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली।

8

खगकुल कुलकुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई,
मधु मुकुल नवल रस गागरी।।

9

खिंच जाय अधर पर वह रेखा,
जिसमें अंकित हो मधु लेखा,
जिसको यह विश्व करे देखा,
वह स्मिति का चित्र बना जा रे।
मेरी आँखों की पुतली में, तू बनकर प्रान समा जा रे!

10

खड़े शान से रहना अच्छा, घायल शीश उठाय,
उचित नहीं है गड़े स्वर्ण में, रहना शीश झुकाय।

1

गरज आपनी आप सों, 'रहिमन' कही न जाय।
जैसे कुल की कुलवधू, पर घर जात लजाय।।

2

गरब करहु रघुनन्दन, जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति, सिय कै छाँह।।

3

गौरव क्या है, जनभार वहन करना ही,
सुख क्या है, बढ़कर दुख सहन करना ही।

4

गाई प्रभु ने वधू उर्मिला की गुण गीता,
तूने तो सहधर्मचारिणी के भी ऊपर,
धर्मस्थापन किया, भाग्यशालिनि, इस भू पर।

5

गुण पर न रीझे, वह, मनुज है, तो भला पशु कौन है?
निज शत्रु के गुणगान में भी, योग्य किसको मौन है?

6

गिरना क्या उसका, उठा ही नहीं जो कभी?
मैं ही तो उठा था आप गिरता हूँ, जो अभी।

फिर भी उठूँगा और बढ़के रहूँगा मैं,
नर हूँ, पुरुष हूँ मैं, चढ़के रहूँगा मैं।

7

गुनी-गुनी सब कोउ कहैं, निगुनी गुनी न होत।
सुन्यो कहूँ तरु अर्क तें, अर्क समान उदोत?

8

गर्वित है आज माता, गांधी-सा पुत्र पाकर।
भारत के राजनैतिक, आकाश का दिवाकर।।

9

गए, लौट भी वे आवेंगे, कुछ अपूर्व, अनुपम लावेंगे।
रोते प्राण उन्हें पावेंगे, पर क्या गाते-गाते?
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

10

गंगा क्यों टेढ़ी चलती हो, दुष्टों को शिव कर देती हो?
क्यों यह बुरा काम करती हो, नरक रिक्त कर, दिवि भरती हो?

11

गीत, अगीत कौन सुन्दर है?
गाकर गीत विरह के तटिनी, बेगवती बहती जाती है,
दिल हलका कर लेने को, उपलों से कुछ कहती जाती है,
तट पर एक गुलाब सोचता, देते स्वर यदि मुझे विधाता,
अपने पतझर के सपनों का, मैं भी जग को गीत सुनाता,
गा गाकर बह रही निर्झरी, पाटल मूक खड़ा तट पर है। गीत अगीत…।

(दिनकर)

12

ग्रीवा तक हाथ न जा सकते, उँगलियाँ न छू सकती ललाट।
वामन की पूजा किस प्रकार, पहुँचे तुम तक मानव विराट्।।
(दिनकर)

13

गाइए गनपति जगवन्दन।
संकर सुवन भवानी नन्दन।

14

गगन में थाल, रवि चन्द दीपक बने,
तारिका-मंडल जनक मोती।
धूप मलयानल लो, पवन चवरो करे,
सगल बनराय फूलंत जोती।
कैसी आरती होई। भवखंडना तेरी आरती।
अनहद सबद बैजंत भेरी। रहाउ।।

15

गुरु बिन कौन बतावे बाट? बड़ा विकट यमघाट।
भ्रांति की पहाड़ी, नदिया बिच मों। अहंकार की लाट।।

16

गीत इससे गूँजता है, प्रेम का उत्थान का शुभ,
सान्त्वना देती मधुर, संगीत की पीयूष धारा।
है अधिक गतिमय सुदर्शन, चक्र से चरखा तुम्हारा।

17

गंदगी, ग़रीबी, मैलेपन को दूर रखो,
शुद्धोदन के पहरेवाले चिल्लाते हैं;

है कपिलवस्तु पर फूलों का शृंगार पड़ा,
रथ समारूढ़ सिद्धार्थ घूमने जाते हैं।
सिद्धार्थ देख रम्यता, रोज़ ही फिर आते,
मन में कुत्सा का भाव नहीं, पर, जगता है;
समझाए उनको कौन, नहीं भारत वैसा,
दिल्ली के दर्पण में जैसा वह लगता है!

18

गाज्यो कपि गाज ज्यों, विराज्यो ज्वाल जालजुत,
भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
धावौ, धावौ, धरौ, सुनि धाए, जातुधान धारि,
बारिधारा उलदै जलदु जौन सावनो।।
लपट-झपट झहराने, हहराने बात,
भहराने भट, पर्‍यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि, पेलि सचिव चले लै ठेलि,
नाथ! न चलैगो बलु, अनलु भयावनो।।

19

ग़र यार की मर्जी हुई, सर जोड़ के बैठे।
घर बार छुड़ाया तो वहीं छोड़ के बैठे।।
मोड़ा उन्हें जिधर, वहीं मुँह मोड़ के बैठे।
गुदड़ी जो सिलाई तो वही ओढ़ के बैठे।
औ शाल उढ़ाई तो उसी शाल में खुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द, जो हर हाल में खुश हैं।।

(नज़ीर)

20

ग़र खाट बिछाने को मिली, खाट में सोए।
दूकाँ में सुलाया तो वो जा हाट में सोए।।
रस्ते में कहा, सो तो वह जा बाट में सोए।
ग़र टाट बिछाने को दिया, टाट में सोए।।
औ खाल बिछा दी तो उसी खाल में ख़ुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द, जो हर हाल में ख़ुश है।।

(नज़ीर)

21

गांधी ने अवसर को समझा है,
हम भी समझें अवसर को,
अपनी सारी शक्ति लगाकर,
एक करें दक्षिण उत्तर को!

(भवानी प्रसाद मिश्र : 'गांधी पंचशती')

22

गांधी तू आज हिन्द की इक शान बन गया।
सारी मनुष्य जाति का, अभिमान बन गया।।
तू सत्य, अहिंसा, दया, निस्वार्थ त्याग से।
जाकर तू स्वर्ग लोक में, भगवान बन गया।।
तू दोस्त है हर क़ौम का, हर दिल अज़ीज़ है।
सारा जहान तेरा कद्रदान बन गया।।
तेरी नसीहतों में, वो, जादू असर है।
जिसको लगी हवा तेरी, इन्सान बन गया।।

घ

1

घन घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रियाहीन डरपत मन मोरा।।

2

घूँघट का पट खोल री, तोको,
पिया मिलेंगे, पिया मिलेंगे।
घट-घट में वह सांई रमता,
कटुक वचन मत बोल।

3

घर में रहकर भी व्यसनों से,
बचे रहो, तब तो है बात।
देखो, कहाँ लिप्त होता है,
जल में रहकर भी जलजात।

4

घर-घर डोलत दीन है, जन-जन जाचत जाय।
दिये लोभ-चसमा चखनि, लघु हि बड़ो लखाय।।

5

घूम रहा है कैसा चक्र।
वह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र!

घुसा तिमिर अलकों में भाग,
जाग, दुखिनी के सुख, जाग।

7

घटने पर भी सज्जन का है,
प्रेम नहीं फीका होता।
फटने पर भी लौह-रँगा,
कपड़ा न चटक, अपनी खोता।

8

घड़ी एक नहिं आवड़े तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवन होय।

9

घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गए सवार,
रानी एक, शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार पर वार।
घायल होकर गिरी सिंहनी, उसे वीरगति पानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह, हमने सुनी कहानी थी।

10

घड़ी घड़ी पल पल छन न बिसारूँ,
तुमको दया क्यों नहिं आवे?
गोपाल मेरी करुणा क्यों नहिं आवे?

1

चहहु जु साँचो निज कल्यान।
तौ सब मिलि भारत संतान।
जपहु निरन्तर एक ज़बान।
हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्तान।

2

चारु चन्द्र की चंचल किरणें,
खेल रही हैं जल-थल में।

3

चलना, फिरना और विचरना हो कहीं,
किन्तु हमारा प्रेम-पालना है यहीं।
हो जाऊँ मैं लाख बड़ा नरलोक में,
शिशु ही हूँ, तुम मातृभूमि के ओक में।
निज मातृभूमि की गोद में।

4

चिरकाल राम है, भरत भाव का भूखा,
पर उसको तो कर्त्तव्य मिला है रूखा।

5

चलना मुझे है बस, अंत तक चलना,
गिरना ही मुख्य नहीं, मुख्य है सँभलना।

~ 6 ~

चलते बड़े जन आप हैं, जिस रीति से संसार में,
करते उन्हीं का अनुसरण हैं, अन्य जन व्यवहार में।

~ 7 ~

चटक न छाँड़त घटत हूँ, सज्जन नेह गंभीर।
फीको परै न बरु फटे, रंग्यो चोल रंग चीर।।

~ 8 ~

चला गया रे, चला गया!
छला न जाय हाय! वह यह मैं,
छला गया रे, छला गया!

~ 9 ~

चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!
रोता है, अब किसके आगे?
तुझे देख पाते वे रोता, मुझे छोड़ जाते क्यों सोता?
अब क्या होगा? तब कुछ होता,
सोकर हम खोकर ही जागे!
चुप रह........................

~ 10 ~

चाहे तुम सम्बन्ध न मानो!
स्वामी! किन्तु न टूटेंगे ये,
तुम कितना ही तानो!
पहले हो तुम यशोधरा के,

पीछे होगे किसी परा के,

मिथ्या भय हैं जन्म-जरा के,

इन्हें न उनमें सानो!

11

चातक हंस सराहिए,

टेक, विवेक विभूति।

12

चमक उठी सन् सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,

बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।

ख़ूब लड़ी मर्दानी वह तो, झांसीवाली रानी थी।

13

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,

चाह नहीं, प्रेमी माला में, बिंध प्यारी को ललचाऊँ।

चाह नहीं, सम्राटों के शव पर हे हरि! डाला जाऊँ,

चाह नहीं, देवों के सिर पर, चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।

मुझे तोड़ लेना वनमाली,

उस पथ पर देना तुम फेंक।

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,

जिस पथ जावें वीर अनेक।

14

चहौं बस एक यही श्रीराम।

अबिरल अमल अचल अनपाइनि, प्रेम-भगति निष्काम।।

चहौं न, सुत-परिवार, बंधु-धन, धरनी, जुवति ललाम।

सुख-वैभव उपभोग जगत् के, चहौं न सुचि सुरधाम।।

15

चलत पयादें खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहिं, भरत सरिस को आजु।।

16

चारों ओर चित्त के, कूड़ा और कर्कट इकट्ठा जब होता है,
तब जठराग्नि की सहायता से उसको, दग्ध कर आत्मशुद्धि
पाता उपवासी है
साधारण अग्नि में ज्यों सोना शुद्ध होता है।

17

चाहता हूँ कि मनुष्य रहूँ मैं,
और अपने को वही कहूँ मैं।
बनूँ बस मनुष्यता का मानी,
यही हो मेरी एक निशानी।

18

चलते बड़े जन आप हैं, जिस रीति से संसार में,
करते उन्हीं का अनुसरण हैं, अन्य जन व्यवहार में।

19

चलो मन गंगा जमुना तीर।
गंगा जमुना निरमल पानी, सीतल होत सरीर।
बंसी बजावत आवत कान्हा, संग लियो बलबीर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, कुंडल झलकत हीर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल पर सीर।

20

चेत कर, नर, चेत कर, गफलत में सोना छोड़ दे।
जाग उठ तत्काल, हरिचरणों में चित को जोड़ दे।

21

चर्चा हमारी भी कभी संसार में सर्वत्र थी,
वह सद्गुणों की कीर्ति मानो, एक और कलत्र थी।
इस दुर्दशा का स्वप्न में भी, क्या हमें कुछ ध्यान था?
क्या इस पन ही को हमारा वह अतुल उत्थान था?

22

चेतना का सुन्दर इतिहास,
अखिल मानव-भावों का सत्य,
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य,
अक्षरों से अंकित हो नित्य!

(प्रसाद)

23

चरखे! गा दे जी के गान!
इक डोरा-सा उठता जी पर,
इक डोरा उठता पूनी पर,
दोनों कहते बल दे, बल दे,
टूट न जाए तार बीच में,
टूट न जाए तान!

(माखनलाल चतुर्वेदी)

छ

1

छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई।
जस थोरेहुँ धन खल इतराई।।

2

छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटन को उतपात।
का 'रहीम' हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात।।

3

छलना नहीं, छला जाना ही,
सरल जनों ने जाना।

4

छोड़ो निद्रा, लो अंगड़ाई, आज शृंखलाएँ तोड़ो,
आज मुक्ति की होड़ दौड़ में, आओ, तुम भी तो दौड़ो!
समता के नारे की गति से, अपनी रथगति तुम जोड़ो।
तोड़ो इस शोषण की दाढ़ें, अब सम्मुख है विकट समर,
सुनो-सुनो, ओ सोनेवालों, जागृति के ये भीषण स्वर।

(नवीनजी : कारागार : बरेली 1943)

5

छोड़ा मेरे लिए हाय! क्या तुमने आज उदार!
कैसे भार सहेगा सम्प्रति, राहुल है सुकुमार!
आर्य, यह मुझ पर अत्याचार!

6

छेड़ो न वे लता के छाले, उड़ जावेगी धूल,
हलके हाथों प्रभु के अर्पण कर दो उसके फूल,
गंध है, जिनका जीवन-दान।
रुदन का हँसना ही तो गान।

7

छू देती है मृदु पवन जो,
पास आ गात मेरा।
तो हो जाती परम सुधि है,
श्याम-प्यारे करों की। (हरिऔध)

8

छाँड़ि मन, हरि विमुखन को संग।
जिनके संग कुबुद्धि उपजत है, परत भजन में भंग।

9

छुद्र घंटिका कटितट सोभित,
नूपुर सबद रसाल।
बसो मोरे नैनन में नंदलाल।

10

छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटन को उत्पात।
कहा विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात।

11

छिन्न हुए भीगे अंचल में मन को,
रुखे-सूखे अधर त्रस्त चितवन को,

दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,
वह रोती अस्फुट स्वर में;
सुनते हैं आकाश, धीर निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर-ठहर कर!

(निराला : 'विधवा')

12

छोटे से जीवन की कैसे, बड़ी कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ?
मधुप गुनगुनाकर कह जाता, कौन कहानी यह अपनी।

13

छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार।
दुख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार!

14

छोनी में न छाड्यो छप्यो, छोनिप को छोना छोटो,
छोनिप-छपन, बाँको बिरुद बहतु हौं।

15

छावते कुटीर कहूँ, रम्य जमुना कैं तीर।
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं।
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेमगाथा गूढ़,
स्रौन रसना मैं रस और भरते नहीं।
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि,
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं।

हो तौ चित चाव जौ न रावरे चितावन को,
तजि ब्रज-गाँव इतै पाँव धरते नहीं।

(रत्नाकर)

16

छल किया भाग्य ने, मुझे अयश देने का,
बल दिया उसी ने, भूल मान लेने का।
अब कटे सभी वे पाश नाश के प्रेरे,
मैं वही कैकेयी, वही राम तुम मेरे।
हो तुम्हीं भरत के राज्य, स्वराज्य सम्हालो,
मैं पाल सकी न स्वधर्म, उसे तुम पालो।

(साकेत : मै. श. गुप्त)

17

छैल जो छबीला, सब रंग में रंगीला, बड़ा
चित्त का अड़ीला, कहूँ देवतों से न्यारा है।
माल गले सोहै, नाक मोती सेत जो है,
कान कुंडल मन मोहै, लाल मुकुट सिर धारा है।।
दुष्ट जन मारे, सब संत जो उबारे, 'ताज',
चित्त में निहारै प्रन प्रीति करनवारा है।
नंदजू का प्यारा, जिन कंस को पछारा, वह,
वृन्दावनवारा, कृष्ण साहब हमारा है।

(ताज)

ज

1

जोगी मत जा, मत जा, मत जा,
पाँव परूँ मैं तोरी।

2

जाओ नाथ! अमृत लाओ तुम,
मुझमें मेरा पानी।
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी,
मुक्ति तुम्हारी रानी।

3

जिस पर हृदय का प्रेम होता, सत्य और समग्र है।
उसके लिए चिंतित तथा रहता सदा वह व्यग्र है।।

4

जो धर्मपालन से विमुख, जिसको विषय ही भोग्य हैं।
संसार में मरना उसी का, सोचने के योग्य है।

5

जो इंद्रियों को जीत कर, धर्माचरण में लीन है,
उसके मरण का सोच क्या? वह मुक्त बंधनहीन है।

6

जैसे धनी मानी गृही जाए तीर्थ कृत्य को,
और घर बार सौंप जाए भले भृत्य को।

सौंपा अपने को, यह धाम वैसे मानो तुम,
थाती इसे जानो, निज धर्म पहचानो तुम।

~ 7 ~

जीना ही तो कठिन, सहज सबको मरना है।

~ 8 ~

जहाँ कर्म करके भी लोग, नहीं चाहते थे फल भोग।
वहीं आज प्रतिकूल प्रवाह, कर्म न करके, फल की चाह।।

~ 9 ~

जहाँ राम की बाट, वहाँ भी रावण आ जाता है,
बार-बार मरकर भी पापी, पुनर्जन्म पाता है।

~ 10 ~

जानेवालों की जीत वहीं,
आनेवालों से हार जहाँ।
अन्यथा हमारा गौरव जो, वह संतानों का भार यहाँ।

~ 11 ~

जीवन तो जाने ही को है,
दे दो उसे धर्म की भेंट।

~ 12 ~

जप, माला, छापा, तिलक, सरे न एकौ काम।
मन कांचे, नाचे वृथा, सांचे रांचे राम।।

~ 13 ~

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है, और मृतक समान है।

(म. वी. प्र. द्विवेदी)

14

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।

(ग. प्र. शु. सनेही)

15

जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई।
कोटि कंठ से मिलकर कह दो, हम सब हैं भाई-भाई।
पुण्यभूमि है, स्वर्गभूमि है, जन्मभूमि है, देश यही।
इससे बढ़कर इस दुनियाँ में, और कोई भी जगह नहीं।

(रूपनारायण पांडे)

16

जेल! हमारे मनमोहन के प्यारे पावन जन्मस्थान!
तुझको सदा तीर्थ मानेगा, कृष्णभक्त यह हिन्दुस्तान!
मैं पुलकित हो उठी, यहाँ भी आज गिरफ्तारी होगी!
फिर जी धड़का, क्या भैय्या की सचमुच तैयारी होगी!
आँसू छलके, याद आ गई, राजपूत की वह बाला,
जिसने विदा किया भाई को, देकर तिलक और भाला।
सदियों सोई हुई वीरता जागी, मैं भी वीर बनी,
जाओ भैय्या, विदा तुम्हें करती हूँ, मैं गंभीर बनी।
याद भूल जाना मेरी उस आँसूवाली मुद्रा की।
कर लो अब स्वीकार बधाई, छोटी बहन सुभद्रा की।

(सु. कु. चौहान)

17

जब रण करने को निकलेंगे, स्वतंत्रता के दीवाने,
धरा धँसेगी, प्रलय मचेगी, व्योम लगेगा थर्राने।

18

जलने को ही स्नेह बना।
उठने को ही वाष्प बना है,
गिरने को ही मेह बना।

19

जलता स्नेह जलावेगा ही,
फोले वाष्प फलावेगा ही,
मिट्टी मेह गलावेगा ही,
सब सहने को देह बना।

20

जल में शतदल तुल्य सरसते,
तुम घर रहते, हम न तरसते,
देखो, दो-दो मेघ बरसते,
मैं प्यासी की प्यासी!
आओ हो बनवासी!

21

जितने कष्ट-कंटकों में, है जिनका जीवन-सुमन खिला।
गौरव-गंध उन्हें उतना ही, अत्र, तत्र, सर्वत्र मिला।

22

जय गंगे, आनन्द तरंगे, कलरवे,
अमल अंचले, पुण्यजले, दिवसम्भवे!

सरस रहे यह भरतभूमि तुमसे सदा,
हम सबकी तुम एक चलाचल सम्पदा।

23

जंगल में मंगल मनाओ, अपनाओ देव,
शासन जनाओ, हमें नागर बनाओ तुम।

24

जब-जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरती।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह। राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस। राम जन्म कर हेतु।।

25

जब हम सोने को ठोक-पीट गढ़ते हैं,
तब मान, मूल्य, सौन्दर्य, सभी बढ़ते हैं।
सोना मिट्टी में मिला, खान में सोता,
तो क्या इससे कृतकृत्य कभी वह होता?
"वह होता चाहे नहीं, किन्तु हम होते,
हैं लोग उसी के लिए झींकते रोते।"

26

जो संग्रह करके त्याग नहीं करता है,
वह दस्यु लोक धन लूट-लूट धरता है।

27

जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे,
वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे।

पर जो मेरा गुण, कर्म, स्वभाव धरेंगे,
वे औरों को भी तार, पार उतरेंगे।

28

जननी ने मुझको जना, तुम्हीं ने पाला,
अपने साँचे में आप यत्न से ढाला।
सबके ऊपर आदेश तुम्हारा मैया,
मैं अनुचर, पूत, सपूत, प्यार का भैया।

29

जब पल भर का है मिलना, फिर चिर वियोग में झिलना।
एक ही प्रात है खिलना, फिर सूख धूल में मिलना,
तब क्यों चटकीला सुमन रंग?

30

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई।

31

जाओ रानी, याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी।
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनासी।
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फांसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोली से चाहे झांसी।

32

जाओ नाथ! अमृत लाओ तुम, मुझमें मेरा पानी,
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी।
प्रिय तुम तपो, सहूँ मैं भरसक, देखूँ बस हे दानी।
कहाँ तुम्हारी गुणगाथा में, मेरी करुण कहानी?

33

जय राम रमा रमनं समनं,
भवताप भयाकुल पाहि जनं।
अवधेस, सुरेस, रमेस, विभो,
सरनागत माँगत पाहि प्रभो।

34

जिहिं रहीम मन आपनो, कीन्हों चारु चकोर।
निसि-वासर लाग्यो रहे, कृष्ण-चन्द्र की ओर।।

35

जे सुलगे ते बुझ गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
'रहिमन' दाहे प्रेम के, बुझि-बुझि कै सुलगाहिं।।

36

जे ग़रीब सों हित करें, धनि 'रहीम' वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई-जोग।।

37

जो रहीम करिबौ हुतौ, ब्रज कौ इहै हवाल?
तौ काहे पर कर धर्‌यौ, गोवर्धन गोपाल?

38

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे तें फरजी भयो, टेढ़ौ-टेढ़ौ जाय।।

39

जैस जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताको बुरो न मानिये, लेन कहाँ सूँ जाय।।

40

जिहि अंचल दीपक दुर्‌यो, हन्यो सो ताही गात।
'रहिमन' असमय के परे, मित्र सत्रु ह्वै जात।।

41

जो बड़ेन को लघु कहैं, नहिं 'रहीम' घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहें, कछु दुख मानत नाहिं।।

42

जो 'रहीम' गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय।।

43

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात।।

44

जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहिं।।

45

जिन दिन देखे वे सुमन, गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की, अपत कँटीली डार।।

46

जीती जाती हुई, जिन्होंने भारत बाजी।
निज बल से दल मेट, विरोधी सबल कुराजी,
जिनके आगे ठहर सके जंगी न जहाजी,
हैं ये वही प्रसिद्ध छत्रपति भूप शिवाजी।

47

"जहाँ हमारे राम, वहीं हम जाएँगे,
वन में ही नव नगर निवास बनाएँगे।
ईंटों पर अब करें भरत शासन यहाँ?"
जनसमूह ने किया महा कलकल वहाँ?

48

जन्मभूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे,
हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे।
चलना, फिरना और विचरना हो कहीं,
किन्तु हमारा प्रेम-पालना है यहीं।
हो जाऊँ मैं लाख बड़ा नरलोक में,
शिशु ही हूँ तुझ मातृभूमि के ओक में।

49

जेहिं के जेहिं पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।

50

जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव विष तें विष भारी।
जे हरषहिं परसंपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी।
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान-पिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे।

51

जल को गए लक्खनु हैं लरिका,
परिखौ पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं,
अरु पाय पखारिहौं भूभुरि-डाढ़े।।

तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै,
बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े,
जानकीं नाह को नेहु लख्यो,
पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े।।

52

जग सपनौ सो सब परत दिखाई तुम्हैं,
तातैं तुम ऊधो हमैं सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर, सुनै को बात, सोवत की,
जोई मुँह आवत, सो बिबस बयात हौ।
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि,
त्यौं ही तुम, आपहीं सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग-जोग कबहूँ, न जानैं कहा, जोहि जकौ,
ब्रह्म-ब्रह्म कबहूँ बहकि बरात हौ।

53

जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा बिधि गुनी।
निज पर गृह परिचरजा करईं। रामचन्द्र आयसु अनुसरईं।

54

जिनके हिये सिया राम बसे,
तिन और का नाम लिया न लिया।
जिनके द्वारे पर गंग बहे,
तिन कूप का नीर पिया न पिया।
तिन और का नाम लिया न लिया।

जिन मात-पिता की सेवा करी,
तिन तीरथ वरत किया न किया,
तिन और का नाम लिया न लिया!

55

जिसका जीवन बना कहानी!
करो प्रणाम! इस समाधि को, करो प्रणाम!

☆☆☆

जिसने डोर मिलन की बाँधी,
अन्यायों की रोकी आँधी,
आज जहाँ हम सुमन सजाते,
सोया, इसी सेज पर गांधी,
बच्चो, इसी संत के कारण, हुआ जगत् में अपना नाम!

☆☆☆

सिखा गया जो हँसकर जीना,
सिखा गया हँसकर विष पीना,
सिखा गया, सिर नहीं झुकाना,
खेले संगीनों से सीना,
राजघाट पर सजा हुआ यह, सदियों का सपना अभिराम!

☆☆☆

सत्य, अहिंसा का यह मानी,
कभी न सहता था मनमानी,
जन्म समय से, विदा घड़ी तक,
जिसका जीवन बना कहानी,

पतित पावनों को सिखलाया,
तुम बन सकते राजा राम।

(सरस्वती कुमार दीपक)

56

जो जैसी करनी करता है, वैसा ही फल पाता।
बीज करेले का बोए से, आम नहीं उग पाता।

57

जिसे स्वस्थ रहना हो, रक्खे इसे हमेशा याद।
भोजन का उद्देश्य स्वास्थ्य है, नहीं जीभ का स्वाद।

58

जाको राखे साइयाँ, मार सके न कोय।
बाल न बाँका कर सके, जो जग बैरी होय।

59

जननी जन्मभूमि, स्वर्ग से महान् है।
इसके वास्ते ये तन है, मन और प्राण है।
इसके कण-कण में लिखा, राम-कृष्ण नाम है।
हुतात्माओं के रुधिर से, भूमि शस्य-श्याम है।
धर्म का ये धाम है, सदा इसे प्रणाम है।
स्वतन्त्र है धरा यहाँ, स्वतन्त्र आसमान है।
जननी जन्मभूमि, स्वर्ग से महान् है।

60

जीवन में कुछ करना है तो,
मन को मारे मत बैठो।

आगे-आगे बढ़ना है तो,
हिम्मत हारे मत बैठो।
चलने वाला मंजिल पाता, बैठा पीछे रहता है,
ठहरा पानी सड़ने लगता, बहता निर्मल होता है,
पाँव मिले चलने की खातिर, पाँव पसारे मत बैठो।
आगे-आगे बढ़ना है तो, हिम्मत हारे मत बैठो।

61

जहाँ कर्म करके भी लोग, नहीं चाहते थे फल-भोग,
वहीं आज प्रतिकूल प्रवाह, कर्म न करके, फल की चाह।

62

जितने कष्ट-कंटकों में है, जिनका जीवन-सुमन खिला,
गौरव-गंध उन्हें उतना ही, अत्र-तत्र, सर्वत्र मिला।

63

जिसने युग-युग से दबे हुओं को दी आशा,
जिसने गूँगों को दी अधिकारों की भाषा,
जिसने दीनों में छिपी दिव्यता दिखलाई,
जिसने भारत की फूटी किस्मत दी सँवार।
—गोली जो हो जाए छाती के आर-पार,
—गोली जो करे प्रवाहित जीवन-रक्त-धार,
—गोली जो कर दे टुकड़े-टुकड़े श्वास-तार,
ऐहसानमन्द भारत का उसको पुरस्कार!

(बच्चन : 'बापू')

1

झूठे बस नाते सही,
तू तो जीव मात्र का,
जीव-दया-भाव से ही,
हमको उबार जा!

2

झाँक न झंझा के झोंके में,
झुककर खुले झरोखे से।

3

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घोर!
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर! (निराला)

4

झर, झर, झर निर्झर-गिरि, सर में,
घर, मरु तरु-मर्मर सागर में,
अरे वर्ष के हर्ष। (बादल राग, निराला)

5

झूठी देखी प्रीत जगत में झूठी जी।

6

झुन झुन दुल-दुल, मंजुल बुलबुल,
फुल्ल मुकुल हरि आए, हो हो फुल्ल मुकुल हरि आए।

मेरे प्राण-भुलावन आए, मेरे नयन-लुभावन आए।

(काज़ी अशरफ़ महमूद)

7

झूठी बात भले ही कोई, कहे हजारों बार,
पर इससे वह सत्य नहीं, हो सकता, किसी प्रकार।

8

झेल कलेजे पर, किस्मत की जो भी नाराज़ी है,
खेल मरण का खेल, मुक्ति की यह पहली बाज़ी है।
सिर पर उठा वज्र, आँखों पर ले हरि का अभिशाप।
अग्नि-स्नान के बिना, धुलेगा नहीं, राष्ट्र का पाप।

(दिनकर : परशुराम की प्रतीक्षा)

9

झन-झन-झन-झन-झन झनन-झनन!
श्वानों को मिलता दूध वस्त्र,
भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर,
जाड़ों की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा-वसन बेच,
जब ब्याज चुकाए जाते हैं,
मालिक जब तेल फुलेलों पर,
पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों का अहंकार,
देता मुझको तब आमंत्रण।

(दिनकर)

1

टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिर-फिर पोइए, टूटे मुक्ताहार।।

2

टंकार ही निर्घोष था, शरवृष्टि ही जलवृष्टि थी,
जलती हुई रोषाग्नि से, उद्दीप्त विद्युद्दृष्टि थी।
गांडीव रोहित रूप था, रथ ही सशक्त समीर था,
उस काल अर्जुन वीरवर, अद्भुत जलद गंभीर था।

3

टेर सुनो ब्रजराज दुलारे।
दीन, मलीन, हीन सुभ गुण सों,
आय पर्यो हूँ द्वार तिहारे।

4

टुक नींद से अखियाँ खोल ज़रा,
ओ गाफ़िल रब से ध्यान लगा।
उठ जाग मुसाफिर भोर भई,
अब रैन कहाँ जो सोवत है!

5

टुक बूझ कवन छप आया है।
कइ नुकते में जो फेर पड़ा, तब ऐन गैन का नाम धरा।

जब मुरसिद नुकता दूर किया, तब रेनों ऐन कहाया है।।
तुसीं इलम किताबाँ पढ़दे हो, केहे उलटे माने करदे हो।
बेमूजब ऐंवें लड़दे हो, केहा उलटा वेद पढ़ाया है।।
दुइ दूर करो, कोइ सोर नहीं, हिन्दू-तुरक कोई होर नहीं।
सब साधु लखो, कोई चोर नहीं, घट-घट में आप समाया है।।
ना मैं 'मुल्ला', ना मैं 'काजी', ना मैं 'सुन्नी', ना मैं 'हाजी।'
'बुल्लेशाह' नाल लाई बाजी, अनहद सबद बजाया है।।

6

टूट गया वह दर्पण निर्मम!
उसमें हँस दी मेरी छाया,
मुझमें रो दी ममता माया,
अश्रु-हास ने विश्व सजाया,
रहे खेलते आँख-मिचौनी,
प्रिय! जिसके पर्दे में 'मैं' तुम!

7

टूट गया तंत्री का तार,
अब भी गूँज रही झंकार।

ठ

1

ठुमकि चलत रामचन्द्र, बाजत पैंजनियाँ।
किलकि किलकि उठत धाय, गिरत भूमि लटपटाय,
धाय मातु गोद लेत, दसरथ की रनियाँ।

2

ठहर, बाल–गोपाल कन्हैया।
राहुल, राजा भैया!
कैसे धाऊँ, पाऊँ तुझको, हार गई मैं दैया,
सद्द दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध–फेन–सी शैया।

3

ठहर, भर आँखों देख नई,
भूमिका अपनी रंगमई,
अखिल की लघुता आई बन,
समय का सुन्दर वातायन,
देखने को अदृष्ट नर्तन!
अरे अभिलाषा के यौवन!
आह रे, वह अधीर यौवन!

4

ठान लो रहेंगे मान से ही या मिटेंगे अब,
जान जब तक रहे, झंडा झुकने न दो।

5

ठुमुक ठुमुक पग कुमुक-कुंज-मग,
चपल चरण हरि आए, हो हो चपल चरण हरि आए,
मेरे प्राण लुभावन आए, मेरे नयन लुभावन आए।

(काज़ी अशरफ़ महमूद)

6

ठहरे पाँव मंज़िलें ठहरीं,
थका काफ़िला ठहरा।
बहुत मनाया, किन्तु न ठहरी,
रात नहीं ठहरी।
ठहर गईं मनुहारें,
बिगड़ी बात नहीं ठहरी।
क्या लेता विश्राम?
अभागिन रात नहीं ठहरी।

(माखनलाल चतुर्वेदी)

1

डारि साँटि, मुसुकाइ तबहिं गहि,
सुत को कंठ लगायो।
मैया, मोरी मैं नहिं माखन खायो।

2

डगमग चाल छाँड़ि दे गोरी,
घट में बसें पिया तोरी रे, (कबीर)
जाके चाहे पिया तोहे सुहागिन,
क्या साँवरि, क्या गोरी रे।

3

डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहिकै, प्रेम बखानौ सोय।

4

डाढ़ी के रखैयन की, डाढ़ी-सी रहति छाती।
बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की।
(कबीर)

5

डार मैं, तमोलिन की कछु बिरमानी अरु,
कछु अरुझानी है, करीरनि की झार मैं।

6

डबिया में काला नाग भेजा,
मैं शालिग्राम कर जाना;
मैं गोविन्द गुण गाना।

7

डरो मत, अरे अमृत संतान,
अग्रसर है, मंगलमय वृद्धि।
पूर्ण आकर्षण जीवन-केन्द्र,
खिंची आवेगी, सकल समृद्धि।

8

डाके से डलाए शासकों ने बेकसों के यहाँ,
कौड़ी न छोड़ी साफ़ कर दी सफ़ाई थी।
बचने न पाए शिशु, वृद्ध, वनिताएँ 'दीप',
घेर-घेर अंधाधुंध गोलियाँ चलाईं थीं।

(दीपनारायण शुक्ल 'दीप')

ढ

1

ढलक न जाय अर्घ्य आँखों का,
गिर न जाय यह थाली,
उड़ न जाय पंछी पाँखों का,
आओ हे गुणशाली।
ओ मेरे बनमाली!

2

ढल रे ढल आतुर मन!
तप रे मधुर मधुर मन! (सु. नं. पंत)

3

ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
नाथ! न चलैगो बलु, अनलु भयावनो।

4

ढले न कोई तुम पर,
सब पर तुम, अपने को ढालो।
कायर हो, कर्तव्य कठिन यदि,
किसी युक्ति से टालो।।

त

1

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि 'रहीम' परकाज हित, संपति सँचहिं सुजान।।

2

तात राज्य नहीं किसी का वित्त,
वह उन्हीं के सौख्य, शांति निमित्त,
स्वबलि देते हैं, उसे जो पात्र,
नियत शासक, लोकसेवक मात्र।

3

तुम सुनो, सदैव समीप है—
जो अपना आराध्य है।
आओ, हम साधें शक्ति भर,
जो जीवन का साध्य है।

4

तर्क स्वयं भटका है, सोचने जा तत्व को,
फिर भी न माने कौन, उसके महत्व को।

5

तात! रात बीती वह काली,
उजियाली ले आई लाली,
लदी मोतियों से हरियाली,

ले लीलाशाली, निज भाग।
जाग, दुखिनी के सुख, जाग!

6

तेरा अंक-लाभ कर मुझको चाह नहीं अब कोई।
देकर मुझे कलंक-बिंदु तू, बना न चंद-खिलौना।
कैसी डीठ? कहाँ का टौना?

7

तेरी गोद में ही अम्ब,
मैंने सब पाया है,
ब्रह्म भी मिलेगा कल,
आज मिली माया है।

8

तुझे नदीश मान दे,
नदी, प्रदीप-दान ले।

9

तुम भिक्षुक बनकर आये थे,
गोपा क्या देती स्वामी?
था अनुरूप एक राहुल ही,
रहे सदा यह अनुगामी।
मेरे दुख में भरा विश्व सुख,
क्यों न भरूँ फिर मैं हामी!
बुद्धं शरणं, धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामिऽ।

10

तिनहिं सोहाइ न अवध बधावा,
चोरहिं चाँदनि राति न भावा।

11

त्याग मात्र इसका धन है,
पर मेरा माँ का मन है।

12

तुम हो ऐसे प्रजावृन्द भूलो न हे,
जिनके राजा देवकार्य साधक रहे।
गए छोड़ सुख-धाम दैत्य-संग्राम में,
धैर्य धरो तुम, वही वीर्य है राम में।
बंधु, विदा दो उसी भाव से तुम हमें,
वन के काँटे बनें, कीर्ण कुंकुम हमें।
करूँ पाप संहार, पुण्य-विस्तार मैं,
भरूँ भद्रता, हरूँ विघ्न-भय-भार मैं।

13

तात! यह क्या देखता हूँ आज?
जा रहे हो तुम कहाँ नरराज!
देव, ठहरो, हो न अन्तर्धान,
चाहिए मुझको न वे वरदान।
वन गए हैं आर्य, तुम परलोक,
कौन समझे आज मेरा शोक?

14

तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज केलि-निकुंज-मग, पग-पग होत प्रयाग।

15

तंत्री नाद, कबित्तरस, सरस राग, रति रंग।
अनबूड़े बूड़े, तिरे, जे बूड़े सब अंग।। (बिहारी)

16

तू वैभव-मद में इठलाती,
परकीया-सी सैन चलाती,
री ब्रिटेन की दासी! किसको,
इन आँखों पर है ललचाती?

(दिनकर 'दिल्ली')

17

तुम यहाँ फूँकते हो वंशी,
गाँवों में नाले जारी हैं।
आने दो इन आवाजों को,
मत एक राह भी बन्द करो।
गाँवों को रौशन करना हो,
रौशनी यहाँ की मन्द करो।

18

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गंधहीन तू गंधयुक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन,

मूर्तिवान् बन निर्धन।
गल रे गल निष्ठुर मन! (पंत)

19

तेरा स्मारक तू ही होगी, तू ख़ुद अमिट निशानी थी।
बुंदेले, हरबोलों के मुँह, हमने सुनी कहानी थी।

20

तेरा विराट् यह रूप, कल्पना-पट पर नहीं समाता है।
जितना कुछ कहूँ, मगर, कहने को, शेष बहुत रह जाता है!

21

तू पूछ अवध से राम कहाँ? वृन्दा! बोलो, घनश्याम कहाँ।
ओ मगध! कहाँ मेरे अशोक, वह चंद्रगुप्त बलधाम कहाँ?

22

तू जाग, जाग मेरे विशाल!
मेरी जननी के हिम-किरीट!
मेरे भारत के दिव्य-भाल!
जागो नगपति! जागो विशाल!

23

तुलसी यदि तुम आते न यहाँ,
हम ढोया करते धरा-धाम,
वैभव-विलास में मर मिटते,
सूझता हमें कब सत्य-काम?
('तुलसीदास' सोहनलाल द्विवेदी)

थ

1

थोथे बादर क्वार के, ज्यों 'रहीम' घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करैं पाछिली बात।।

2

थोरो किए, बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों 'रहीम' हनुमंत कौ, गिरधर कहत न कोय।।

3

थोरेई गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहू कान्ह मनौ भये, आज काल के दानि।।

4

था तुम्हें अभिषेक जिनका मान्य,
हैं कहाँ वे धीर-वीर-वदान्य?
वन चलो सब पंच मेरे साथ,
हैं वहीं सबके प्रकृति नरनाथ।

5

थाल सजाकर किसे पूजने,
चले प्रात: ही मतवाले?
कहाँ चले तुम राम नाम का,
पीताम्बर तन पर डाले?

सुंदरियों ने जहाँ देशहित, जौहर-व्रत करना सीखा,
स्वतन्त्रता के लिए, जहाँ के बच्चों ने मरना सीखा।
वहीं जा रहा पूजन करने, लेने सतियों की पद-धूल,
वहीं हमारा दीप जलेगा, वहीं चढ़ेगा माला-फूल।

(श्यामनारायण पांडेय)

6

था एक पूजता देह दीन।
दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण।

7

थूके, मुझ पर त्रैलोक्य, भले ही थूके,
जो कोई कह सके, कहे, क्यों चूके?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
हे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे?

8

था जिसकी ख़ातिर नाच किया,
जब मूरत उसकी आय गई।
कहीं आप कहा, कहीं नाच कहा,
औ तान कहीं लहराय गई।।
जब छैल छबीले सुंदर की,
छबि नैनों भीतर छाय गई।
एक मुरछा-गत सी आय गई,
और जोत में जोत समाय गई।।

1

दामिनि दमक रह न घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।।

2

देव! तुम्हारे कई उपासक, कई ढंग से आते हैं,
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे, कई रंग की लाते हैं।
धूमधाम से, साजबाज से, वे मंदिर में आते हैं,
मुक्तामणि बहुमूल्य वस्तुएँ, लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं।

3

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था, कुछ लोहित हो चला।
तरुशिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी कुलवल्लभ की प्रभा।

4

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखे न कोय।
जो 'रहीम' दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय।।

5

दोनों 'रहिमन' एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माहिं।।

6

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पे करें (धरें), यातें नीचे नैन।।

7

दोषदर्शी होता है द्वेष,
गुणों को नहीं देखता त्वेष।

8

दान दुरुपयोग का वास,
किया जाए किसका विश्वास ?

9

देख लो हे नाथ, लो परितोष,
जननियों के जात हैं निर्दोष।

10

दुष्कर्म तो दुर्बुद्धिजन, हठयुक्त करते आप हैं।
पर दोष देते और को, होते प्रकट जब पाप हैं।

11

दुर्लभ जो होता है, उसी को हम लेते हैं।
जो भी मूल्य देना पड़ता है, वही देते हैं।

12

दण्ड के अनन्तर, बड़ों को दया आती है,
वह कुछ अपनी, विशेषता ही लाती है।

13

दानवों से रक्षा कर, भोगो इस गेह को,
मानों देवमंदिर ही, निज नरदेह को।

14

दूरि भजत प्रभु पीठि दे, गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ही, चंग रंग गोपाल।।

15

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईं नहिं भूल।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल।।

16

देख के तुम्हारी मानवोचित महत्ता यह,
पड़ पशुता की पीठ पर एक कोड़ा जाय।
डगर-डगर मध्य, वसन विदेशी जलें,
नगर-नगर में, नमक कर तोड़ा जाय।

(अनूप शर्मा)

17

देवों का रक्त कृशानु हुआ, ओ ज़ुल्मी की तलवार! सजग!
दुनियाँ के 'नीरो' सावधान, दुनियाँ के पापी ज़ार! सजग!
जाने किसदिन फुंकार उठें, पददलित काल-सर्पों के फन!
झन- झन -झन- झन- झन- झनन- झनन!!

(दिनकर)

18

देखी मैंने आज जरा!
हो जावेगी क्या ऐसी ही, मेरी यशोधरा?

19

दरक कर दिखा गया निज सार जो,
हँस दाड़िम, तू खिल खेल।

प्रकट कर सका न अपना प्यार जो,
रो कठिन हृदय, सब झेल।

20

दीन ऩ हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी,
भूत-दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से।

21

देख लो, साकेत नगरी है यही,
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही।
केतु-पट अंचल सदृश हैं उड़ रहे,
कनक-कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे।

22

दास बनने का बहाना किसलिए?
क्या मुझे दासी कहाना इसलिए?

23

देख लो हे नाथ, लो परितोष;
जननियों के जात हैं निर्दोष।

24

देखो, कैसा स्वच्छन्द यहाँ लघु नद है।
इसको भी पुर में, लोग बाँध लेते हैं।
"हाँ, वे इसका उपयोग बढ़ा देते हैं।"
"पर इससे नद का नहीं, उन्हीं का हित है।
पर बन्धन भी क्या स्वार्थ-हेतु समुचित है?"

25

देवत्व कठिन, दनुज़त्व सुलभ है नर को,
नीचे से उठना सहज कहाँ ऊपर को?

26

दिल्ली, आह! कलंक देश का,
दिल्ली, आह! ग्लानि की भाषा,
दिल्ली, आह! मरण पौरुष का,
दिल्ली, छिन्न-भिन्न अभिलाषा।
विवश देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी,
दिल्ली पराधीन भारत की, जलती हुई कहानी।
मरे हुओं की ग्लानि, जीवितों को रण की ललकार,
दिल्ली वीर विहीन देश की, गिरी हुई तलवार।

27

देह धरे का दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, भूरख भुगतै रोय।।

28

दामिनी दमक रह न घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।।

29

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माही।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।
राम को रूपु निहारति जानकी, कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर.टेकि रही, पल टारत नाहीं।।

30

द्रौपदी औ गनिका गज गीध, अजामिल सों कियो, सो न निहारो।
गौतम गोहिनी कैसे तरी, प्रह्लाद को कैसे हर्यो दुख भारो।।
काहे को सोच करै रसखानि, कहा करिहै रविनन्द बिचारो।
कौन की सेंक परी है जु माखन चाखन हारो, सो राखन हारो।

31

दरिद्री हैं वे ही,
प्रमुख जिनका ध्येय धन ही।

32

दुनियाँ ने चाहा प्रश्न करे,
क्या कहिए, इस दीवाने को।
दो बूँद सुधा लेकर निकला है,
जग की आग बुझाने को।
पर तू न रुका; सीधे अपने,
निर्दिष्ट पथ पर, जा निकला।
पदचिह्नों को देखते हुए,
पीछे-पीछे इतिहास चला। (दिनकर)

1

धीरा है यशोधरे, तू, धैर्य कैसे मैं धरूँ?
तू ही बता, उसके लिए, मैं आज क्या करूँ?

2

धन्य, धन्य, तैं धन्य बिभीषन,
भयउ तात निसिचर-कुल-भूषन।

3

धन्य दशरथ-जनक-पुण्योत्कर्ष है।
धन्य भगवद्भूमि-भारतवर्ष है।

4

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।।

5

धूर धरत नित सीस पर, कहु रहीम केहि काज।
जिहिं रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढत गजराज।।

6

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय।।

7

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली-सी फिर भी मौन।
किसी अज्ञात विश्व की विकल, वेदना, दूती-सी तुम कौन?

8

धन्य सो भूप, नीति जो करई,
धन्य सो द्विज, निज धर्म न टरई।
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा,
धन्य जन्म हरिभक्ति अभंगा।

9

धूम समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता, न बारि पुनि, हानि होति लोचन की।
ऐसी मूढ़ता या मन की। (तुलसी)

10

धँसता दलदल,
हँसता है नद खल्-खल्,
बहता कहता, कुलकुल कलकल कलकल!
('बादल राग' निराला)

11

'धाओ रे, बुझाओ रे', 'कि बावरे हौ रावरे,' या,
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो।।"
(कवितावली : तुलसी)

12

धरा पर धर्मादर्श निकेत,
धन्य है, स्वर्ग-सदृश साकेत।

13

धन का ही बल जिसे,
कर्म खोटा उस जन का।

धन का लाभ यही है–उससे,
पावें जितने जन परितोष,
और नहीं तो देखा करिए,
साँप बने बैठे निज कोष।

15

धन्य-धन्य ब्रज की नर-नारी।
जिन्ह के आँगन नाचत नित-प्रति,
मोहन करतल दै दै तारी।

16

धो डालो फूलों का पराग-गालों पर से,
आनन पर से यह आनन ऊपर हटा लो तो;
कितने पानी में ही, इसको जग भी देखे,
तुम पलभर को केवल मनुष्य बन आओ तो।

17

धन्य जन्म जगतीतल तासू।
पितहिं प्रमोदु चरित सुन जासू।।

न

1

नीलाम्बुजश्यामल कोमलांगम्,
सीता समारोपित वामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं,
नमामि रामं रघुवंशनाथम्।

2

नारी, तेरा यह रूप जीवित अभिशाप है,
जिसमें पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं।

3

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पगतल में,
पीयूष-स्रोत-सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।

4

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली, कली ही सों बंध्यो, आगे कौन हवाल?

5

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
का जानूँ कछु पुन्य प्रगटे,
मानुसा अवतार।

6

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुंदर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेमप्रवाह फूल तारे मंडन हैं,
बन्दीजन खगवृन्द, शेषफन सिंहासन हैं।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस बेष की,
हे मातृभूमि तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश की।

7

नाना फूलों फलों से,
अनुपम जग की वाटिका है विचित्रा।
भोक्ता हैं सैकड़ों ही मधुप,
शुक तथा कोकिला गानशीला।
कौवे भी हैं अनेकों,
परधन हरने में सदा अग्रगामी।
कोई है एक माली,
सुधि इन सबकी, जो सदा ले रहा है।

8

निश्चिन्त नारियाँ, आत्मसमर्पण करके,
स्वीकृति में ही, कृतकृत्य भाव हैं नर के।

9

निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,
हम हों समष्टि के लिए, व्यष्टि बलिदानी।

10

निज शत्रु का साहस, कभी, बढ़ने न देना चाहिए।
बदला समर में वैरियों से शीघ्र लेना चाहिए।

11

निज सहचरों का शोक तो आजन्म रहता है बना।
पर चाहिए सबको सदा, कर्तव्य अपना पालना।

12

नर का परिचय 'नर', नारी का 'नारी' ही सब ठौर।

13

निर्बल होने से सविशेष, करते हैं हम ईर्ष्या–द्वेष।

14

नर के बाँटे क्या नारी की, नग्न–मूर्ति ही आई?
माँ, बेटी या बहिन हाय! क्या, संग नहीं वह लाई?

15

निष्फल भी सच्चा प्रेम, त्यक्त कहाँ होता है?
तीर्थ ही बनाता वह, व्यक्त जहाँ होता है।

16

नर ही अपराधी होता है, निरपराध है नारी।

17

नर होकर भी हाय, सताता है नारी को,
अनाचार क्या कभी उचित है, बलधारी को?
यों तो पशु महिष–वराह भी, रखते साहस, सत्व हैं,
होते परन्तु कुछ और ही, मनुष्यत्व के तत्व हैं।

18

निज धर्म-सहित रहना भला, सेवक बनकर भी सदा।
यदि मिले पाप से राज्य भी, त्याज्य समझिए सर्वदा।

19

नारायण से बिछुड़े नर के,
भाग्य सर्वथा फूटे।

20

नर घर छोड़ निकल जाता है,
नारी घुटती रहती।
लज्जा, भय, विषाद की मारी,
दुखियारी सब सहती।

21

नारी तो 'नारी' रहकर ही,
अच्छी लगती है, सुकुमारि।

22

न तनसेवा, न मनसेवा, न जीवन और धनसेवा,
मुझे है इष्ट जनसेवा, सदा सच्ची भुवनसेवा।

23

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये,
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा,
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे,
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च।

24

नाच अचानक ही उठे, बिन पावस बन मोर।
जानति हौं नन्दित करी, यह दिसि नन्द किसोर।

25

नर की अरु नीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चले, तेतो ऊँचो होइ।।

26

नहिं ऐसो जनम बारम्बार।
का जानूँ कछु पुन्य प्रकटे, मानुसा अवतार।

27

निशि की अँधेरी जवनिके, चुप, चेतना जब सो रही,
नेपथ्य में तेरे न जाने, कौन सज्जा हो रही?

28

निज बंधन को सम्बन्ध सयत्न बनाऊँ,
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

29

निरखि रूप नंदलाल को, दृगन रुचै नहिं आन।
तजि पियूष कोऊ करत, कटु औषध को पान?

30

नाक का मोती, अधर की कांति से,
बीज दाड़िम का, समझकर भ्रांति से।
देख उसको ही, हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है?

31

निज प्रजा-परिवार-पालन-भार,
यदि न आर्य करें स्वयं स्वीकार।
तो चुनो तुम अन्य निज नरपाल,
जो किसी माँ का जना हो लाल।
व्यर्थ हो यदि भरत का उद्योग,
तो करें इतनी कृपा सब लोग।
इस, पिता ही की चिता के पास,
मुझ अगति को भी मिले चिरवास!

32

निज सौध सदन में उटज पिता ने छाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मनभाया।

33

नाचो मयूर, नाचो कपोत के जोड़े,
नाचो कुरंग, तुम लो उड़ान के तोड़े।
गाओ दिवि, चातक, चटक, भृङ्ग भय छोड़े,
वैदेही के वनवास-वर्ष हैं थोड़े।
तितली, तूने यह कहाँ चित्रपट पाया?
मेरी कुटिया में राजभवन मनमाया।

34

नारी! यह रूप तेरा जीवित अभिशाप है,
जिसमें पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं।

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में;
पीयूष-स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।

36

नारियों को था घरों की,
कैद से तूने निकाला।
युद्ध में स्वाधीनता के,
चल पड़ीं सुकुमारियाँ भी,
जो न घूँघट थीं उठातीं,
बन गईं, वह वीर बाला।

37

नीच ही होते हैं बस नीच।
उड़ाती है तू घर में कीच।

38

नारी लेने नहीं, लोक में देने ही आती है,
अश्रु शेष रखकर, वह उनसे प्रभुपद धो जाती है।
पर देने में विनय न होकर, जहाँ गर्व होता है,
तपस्त्याग का पर्व हमारा, वहीं खर्व होता है।

39

निराश तो जीवित ही मरा है,
उत्साह ही जीवन का प्रतीक है।

40

नाम पाहरू दिवस-निसि,
ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित,
जाहिं प्रान केहिं बाट।।

41

नए सूर्य को, नए तूर्य को,
अनुक्षण समझो।
गाँधी के रण को,
साधारण मत समझो।

(भ. प्र. मिश्र)

42

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।

43

नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन।।

प

1

प्रस्थान वन की ओर, या लोक-मन की ओर।
होकर न धन की ओर, हैं राम जन की ओर।

2

प्रीतम छबि नैनन बसी, परछबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आपु फिरि जाय।।

3

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर वकता भए, हमकों पूछत कौन।।

4

पतित क्या उन्नतों के भाव जानें,
उन्हें वे आप ही में क्यों न सानें?

5

प्राप्य राज्य भी छोड़ दिया,
किसने ऐसा त्याग किया?

6

प्राप्त परम गौरव छोड़ूँ,
धर्म बेचकर, धन जोड़ूँ?

7

प्रेम ही की जय जीवन में,
यही आता है, इस मन में।

8

प्रच्छन्न रोग हैं, प्रकट भोग,
संयोग मात्र, भावी वियोग।

9

प्रिय, तुम तपो, सहूँ मैं भरसक,
देखूँ, बस हे दानी!
कहाँ, तुम्हारी गुणगाथा में,
मेरी करुण कहानी।

10

परिणाम को सोचे बिना, जो लोग करते काम हैं,
वे दुख में पड़कर कभी, पाते नहीं विश्राम हैं।

11

पड़ता समय है वीर पर ही, भीरु कायर पर नहीं।
दृढ़ भाव अपना विपद में भी, भूलते बुधवर नहीं।

12

पापी मनुज भी, आज मुँह से, राम नाम निकालते?
देखो, भयंकर भेड़िये भी, आज आँसू डालते।
आजन्म नीच अधर्मियों के, जो रहे अधिराज हैं,
देते अहो! सद्धर्म की, वे भी दुहाई आज हैं।

13

पाएँगे प्रयास बिना, लोग खाने-पीने को,
फिर क्यों बहाएँगे वे, श्रम के पसीने को,
होंगे अकर्मण्य, उन्हें क्या-क्या नहीं सूझेगा?
कोई कुछ मानेगा, न जानेगा, न बूझेगा!

14

प्रत्येक स्वर्ग के साथ, नरक; क्या आवश्यक अनिवार्य अहे,
ये उभय परस्पर पूरक हैं अथवा दूरक; यह कौन कहे?

15

पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलिक दी मेरे सतगुरु।
किरपा कर अपनायो।

16

प्रच्छन्न रोग हैं, प्रकट भोग,
संयोग मात्र, भावी वियोग,
हा लोभ–मोह में लीन लोग,
भूले हैं अपना अपरिणाम!
ओ क्षणभंगुर, भव राम–राम!

17

प्रभु, उस अजिर में आ गए, तुम कक्ष में अब भी यहाँ?
हे देवि, देह धरे हुए, अपवर्ग उतरा है वहाँ।
सखि, किन्तु इस हतभागिनी को, ठौर हाय? वहाँ कहाँ?
गोपा वहीं है छोड़कर, उसको गए थे वे जहाँ।

18

पच्छी परछीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।

19

प्रेमियों का प्रेम गीतातीत है।
हार में जिसमें परस्पर जीत है।

20

प्रिये, प्रत्यय रखता है प्रेम।

21

प्रभु बोले गिरा गंभीर नीरनिधि जैसी!
"हे भरतभद्र, अब कहो, अभीप्सित अपना?
सब सजग हो गए, भंग हुआ ज्यों सपना?"
"हे आर्य, रहा क्या, भरत अभीप्सित अब भी?
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब, तब भी?
पाया तुमने तरु-तले अरण्य-बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा?
तनु तड़प-तड़पकर तप्त तात ने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा?
हा! इसी अयश के हेतु जनन था मेरा?
अब कौन अभीप्सित और आर्य, वह किसका?
संसार नष्ट है, भ्रष्ट हुआ घर जिसका।
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो, तुम्हीं अभीप्सित मेरा?"
प्रभु ने भाई को पकड़ हृदय पर खींचा,
रोदन जल से सविनोद उन्हें फिर सींचा?
"उसके आशय की थाह मिलेगी किसको?
जनकर जननी ही जान न पाई जिसको?"

22

प्रभु को निष्कासन मिला, मुझको कारागार,
मृत्यु-दंड उन तात को, राज्य, तुझे धिक्कार!

परहित सरिस धरम नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

24

परहित-बस, जिनके मन माँहीं।
तिन्ह कहँ, जग दुर्लभ कछु नाहीं।

25

पागल रे! वह मिलता है कब?
उसको तो देते ही हैं सब,
आँसू के कन-कन से गिनकर,
यह विश्व लिए है ऋण उधार,
तू क्यों फिर उठता है पुकार,
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

26

प्रकृति के यौवन का शृंगार,
करेंगे कभी न बासी फूल,
मिलेंगे वे जाकर अतिशीघ्र,
आह उत्सुक है उनकी धूल।

27

पुरातनता का यह निर्मोक,
सहन करती न प्रकृति पल एक,
नित्य नूतनता का आनन्द,
किए है, परिवर्तन में टेक।

28

पहचान सकेंगे नहीं परस्पर,
चले विश्व गिरता-पड़ता।
सब कुछ भी हो यदि पास भरा,
पर दूर रहेगी सदा तुष्टि।
दुख देगी, यह संकुचित दृष्टि।
यह अभिनव मानव-प्रजा-सृष्टि।

29

प्रकृति शक्ति तुमने यंत्रों से, सबकी छीनी!
शोषण कर जीवनी बना दी, जर्जर झीनी!

30

पुर तें निकसी रघुबीरबधू,
धरि धीर दये मग में डग द्वै,
झलकीं भरि भाल कनीं जल की,
पुट सूखि गए मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक,
पर्णकुटी करिहौ कित है?
तिय की लखि आतुरता पिय की,
अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।

31

पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं।

32

पुरुष, नपुंसक, नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्वभाव भज, कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ।।

33

पूज्य माँ की अर्चना का, एक छोटा उपकरण हूँ।
उच्च है, वह शिखर देखो, मैं नहीं वह स्थान लूँगा।
और चित्रित भित्तिका है, मैं नहीं शोभा बनूँगा।
पूज्य है यह मातृ-मन्दिर, नींव का मैं एक कण हूँ।
मुकुट माँ का जगमगाता, मैं नहीं सोना बनूँगा।
जगमगाते रत्न देखो, मैं नहीं हीरा बनूँगा।
पूज्य माँ की चरण-रज का, एक छोटा धूलिकण हूँ।

34

पारस भी है सुलभ, पुरुष पाना दुर्लभ है,
नभ धरती तक रहा, तक रही धरती नभ है।

35

पथ भूल न जाना पथिक कहीं।
जीवन के कुसुमित उपवन में,
गुंजित मधुमय कण-कण होगा।
शैशव के कुछ सपने होंगे,
मदमाता-सा यौवन होगा।
उस यौवन की उच्छृंखलता में,
पथ भूल न जाना पथिक कहीं।

1

फूल; रूप-गुण में कहीं, मिला न तेरा जोड़,
फिर भी तू फल के लिए, अपना आसन छोड़।

2

फल की चिंता नहीं, धर्म की हमको धुन है।

3

फल से क्या, उत्सुक मैं कुछ कर जाने को।

4

फूल वही, जो काँटों में भी, पथ निकाल लेता है।

5

फलों के बीज फलों में फिर आए,
मेरे दिन फिरे न हाय?
गए घन कै कै बार न घिर आए?
वे निर्झर झिरे न हाय!

6

फूट का घड़ा भरा है, फोड़कर बढ़े चलो,
भला हो जिसमें देश का, वो काम सब किए चलो।

7

फिर आज भुजाएँ फड़क उठीं, भारत के वीर जवानों की।
हम पर प्रहार करनेवाले, चिंता कर अपने प्राणों की।

ब

1

बल गर्वित सिसुपाल यह, अजहूँ जगत सतात।
सती नारि निश्चल प्रकृति, परलोकहुँ सँग जात।

2

बीती विभावरी जाग री!
अम्बर पनघट में डुबो रही,
ताराघट ऊषा नागरी।

3

बड़ों की बात है अविचारणीया,
मुकुट-मणि-तुल्य शिरसा धारणीया।

4

बहुजन वन में हैं बने ऋक्ष-वानर-से,
मैं दूँगा अब आर्यत्व, उन्हें निज कर से।

5

बस गई एक बस्ती है,
स्मृतियों की इसी हृदय में,
नक्षत्र-लोक फैला है, जैसा इस नील निलय में।

6

बापू, तू कलि का कृष्ण, विकल आया आँखों में नीर लिये।
थी लाज द्रोपदी की जाती, केशव-सा दौड़ चीर लिये।।

तू कालोदधि का महास्तम्भ, आत्मा के नभ का तुंग केतु।
बापू! तू मर्त्य, अमर्त्य, स्वर्ग, पृथ्वी, भू, नभ का महासेतु।।

7

बालधी बिसाल, बिकराल ज्वालजाल मानो,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि-सी उघारी है।
'तुलसी' सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी-कलापु,
कैधौं चली मेरु तें, कृसानु-सरि भारी है।
देखें जातुधान-जातुधानी अकुलानी कहैं,
काननु उजार्‌यो, अब नगरु प्रजारि है।

8

बार-बार बर माँगउँ, हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी, भगति सदा सतसंग।।

9

बिनु गुर होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुरान, सुख कि लहइ, हरि भगति बिनु।।

10

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल विहीन तरु कबहुँ कि जामा?

11

बिनु बिस्वास भगति नहीं। तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ। जीव न लह बिश्रामु।।

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन। हम तुम्ह तें कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि।।

13

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस, करहिं बिप्र गुर घात।।

14

बुरे भले सब इन्सानों की,
मना रहे हम खैर।
हमें बुराई से नफ़रत है, नहीं बुरे से बैर।

15

बरस घना। मेरा मन भीना।
अमृत बूँद सुहानी हियरे। गुर मोहि मन, हरि रस लीना।

16

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे लम्बी खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागें अति दूर।

17

बनूँ मार्ग का नहीं, नींव का ही रोड़ा।

18

बरषहिं जलद भूमि निअराएँ।
जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ।।

19

बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें।
खल के बचन संत सह जैसें।।

20

बुंदेले हरबोलों के मुख, हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो, झाँसीवाली रानी थी।

21

बिसर गई सब तात पराई।
जबतें साधु संगत मोहि पाई।

22

बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजै,
किन्तु पूर्वापर सोच लीजै।
बिना विचारे यदि काम होगा,
कभी न अच्छा परिणाम होगा।

23

बनाती रसोई सभी को खिलाती,
इसी काम में आज मैं तृप्ति पाती।
रहा किन्तु मेरे लिए एक रोना,
खिलाऊँ किसे मैं अलोना सलोना।

24

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
'रहिमन' हीरा कब कहै, लाख टका मम मोल!

25

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
'रहिमन' फाटै दूध कौ, मथै न माखन होय।।

बैठी है सीता सदा राम के भीतर,
जैसे विद्युद्द्युति घनश्याम के भीतर।

27

बढ़के विराम से है, काम ही नया-नया।

28

बिखरी शक्ति करो एकत्र,
फिर सबसे कह दो सर्वत्र।
भुवन हेतु है भारतवर्ष,
सबका है, उसका उत्कर्ष।

29

बाहर चूर-चूर होकर नर, बहुधा घर आता है,
नारी का मुख वहाँ निरख वह, फिर नवता पाता है।
यदि ऐसा न हुआ तो समझो, दोनों बड़े अभागी,
दोनों की ही सद्गृहस्थता, अब भागी, तब भागी।

30

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छाँड़िए, खोटे ग्रह, जप, दान।।

31

बड़े न हूजै गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय।।

32

बल देंगी हमको हथकड़ियाँ,
तेरी जंजीरों की कड़ियाँ,

सिर पर गोले होंगे अक्षत! स्वागत! स्वागत!
मुँह बन्द पर मुसकायेंगे,
कोड़ों पर बलि-बलि जायेंगे,
कौड़ी देंगे नहीं जमानत!
स्वागत! स्वागत!

33

बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार,
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया, क्षमा औ प्यार।

34

बात पर अपनी अड़ा हूँ,
सींकचे पकड़े खड़ा हूँ,
सकपकाया-सा खड़ा है,
सामने सय्याद!
जेल में आती तुम्हारी याद! (शिवमंगल सिंह 'सुमन')

35

प्रस्थान हो रहा है, पथ का पता नहीं है।
सागर से माँग पानी,
देते न मेघ पानी,
लहरें भी लिख न पातीं,
तूफ़ान की कहानी।

(बलवीर सिंह 'रंग')

भ

1

भूमि परत भा ढाबर पानी।
जनु जीवहिं माया लपटानी।

2

भए प्रकट कृपाला, दीनदयाला, कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी, मुनि मनहारी, अद्भुत रूप बिचारी।
लोचन अभिरामं तनु घनस्यामं, निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला, सोभा सिंधु खरारी।

3

भूल इस भव में मनुष्य से ही होती है,
अन्त में सुधारता है, उसको मनुष्य ही,
किन्तु वह चूक हाय! जिसके सुधार का,
रहता उपाय नहीं, हूक बन जाती है।

4

भाई, मनुष्यत्व देकर,
क्या होगा, कुछ भी लेकर?
अपना मनुष्यत्व खोना,
है बस प्रेतमात्र होना।

5

भोगने से कब घटे हैं, रोग रूपी राग?
और बढ़ती है निरन्तर, ईंधनों से आग!

6

भरत से सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न उन्हें जो गेह?
गूँजते थे रानी के कान, तीर सी लगती थी वह तान!

7

भावुक जन से ही महत्कार्य होते हैं,
ज्ञानी संसार असार मान रोते हैं।

8

भारत-लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बंधन में,
सिंधु-पार वह बिलख रही है, व्याकुल मन में।

9

भूल जयाजय और भूलकर जीना-मरना।
हमको निज कर्तव्य-मात्र है, पालन करना।

10

भूत गया, देखेंगे भविष्य जब आएगा,
ले लें वर्तमान अभी, वह भी तो जाएगा।
पीछे कुछ भी हो, स्वाद चाहिए ही खाने में,
अच्छी लगती है, खुजली भी, खुजलाने में।

11

भूल हम भी क्या एक वाणी, बहुभाषी हो?
भूल विश्वभाव, अपने ही अभिलाषी हों?
राज्य, देश, किंवा, निज जन्मभूमि कह-कह,
घेरे में घिरे से लड़ें, आपस में रह रह?

12

भजन कह्यो तासों, भज्यो न एकौ बार।
दूर भजन जासों कह्यो, सो तू भज्यो गँवार।।

13

भारत में सब भिन्न, अति ताहीं सों उत्पात।
विविध देश मत हूँ विविध, भाषा विविध लखात।
तासों सब मिलि छाँड़ि कै, दूजे और उपाय।
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रात गन आय।

14

भक्त नहीं जाते कहीं, आते हैं भगवान,
यशोधरा के अर्थ है, अब भी यह अभिमान।
मैं निज राजभवन में,
सखि, प्रियतम हैं वन में?

15

भले बुरे सब एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जानि परत हैं काक, पिक, रितु बसंत के माहिं।

16

भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की,
सुधि ब्रज गाँवनि पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि,
दौरि-दौरि नंदपौरी आवन तबै लगीं।
उझकि उझकि पद कंजनि के पंजनि पै,
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं,

हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौ लिख्यौ है कहा,

हमकौं लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं।

17

भुनती वसुधा, तपते नग, दुखिया है सारा अग-जग,
कंटक मिलते हैं प्रतिपग, जलती सिकता का यह मग,
बह जा बन करुणा की तरंग। जलता है, जीवन-पतंग।

18

भीषण जनसंहार आप ही तो होता है।
ओ पागल प्राणी, तू क्यों जीवन खोता है?
क्यों इतना आतंक, ठहर जाओ गर्वीले!
जीने दे सबको, फिर तू भी सुख से जी ले!

19

भगतिहीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे।
भजनहीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा।।

20

भए बरनसंकर कलि, भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख, भय, रुज, सोक, बियोग।।

21

भूल मान लेने से, फिर वह भूल नहीं कहलाती।
नीचे से ऊपर चढ़ने की, सीढ़ी-सी बन जाती।

22

भगें हमारे सारे भय, जय-जय राम कृष्ण की जय।
क्या साकेत धाम वह प्यारा, क्या वह क्रूर कंस की कारा,

वह प्रकाश सर्वत्र हमारा, जय भारत निज देवालय।
जय जय राम कृष्ण की जय!

23

भाग्य-वश रहते हैं बस दीन,
वीर रखते हैं उसे अधीन।

24

भारत माता ग्रामवासिनी!
खेतों में फैला है श्यामल,
धूल-भरा मैला-सा आँचल,
गंगा-यमुना में आँसू-जल,
मिट्टी की प्रतिमा,
उदासिनी!

25

भूला रे भोला भूखा भारत देश!
दूर विराजे पोच प्रजा के परमोदार परेश।
मार सहें नौकरशाही की योग भोग कर क्लेश।
श्री गुरु गांधी-कल्पवृक्ष का, फूले-फले उपदेश।
दे स्वराज्य, स्वाधीन बना दे, हे शंकर अखिलेश!

म

1

मित्र सफल निज जीवन करो,
हृदय बीच शुभ गुण गण धरो।
गैल सदा उन्नति की गहो,
नेता बन समाज में रहो।

2

महावृष्टि चलि फूटि किआरीं।
जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारी।।

3

मामभिरक्षय रघुकुल नायक,
धृतवर चाप रुचिर कर सायक।
मोह महाघन पटल प्रभंजन,
संसय बिपिन अनल सुरंजन।

4

मुदमंगलमय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथराजू।
रामभगति जहँ सुरसरिधारा, सरसइ ब्रह्मबिचार प्रचारा।।

5

मनि मानिक मुकुताछबि जैसी, अहिगिरि गज सिर मोह न तैसी।
नृपकिरीट तरुनी तनु पाई, लहहिं सकल सोभा अधिकाई।।

6

मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना।
राम रूप देखहिं किमि दीना।।

7

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोकलाज खोई।।

8

मैं ढूँढ़ता तुझे था, जब कुंज और वन में,
तू खोजता मुझे था, तब दीन के वतन में,
तू आह बन किसी की, मुझको पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता, संगीत में, भजन में।

9

मातृ-भू सी मातृ-भू है, अन्य से तुलना कहीं।
यत्न से भी ढूँढ़ने पर, मिल हमें सकती नहीं।
जन्मदाती माँ अपरिमित, प्रेम में विख्यात है।
किन्तु वह भी मातृ-भू के, सामने बस मात है।।

10

मानुष हौं तो वही रसखानि,
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तु कहा बसु मेरो,
चरौं नित नंद कि धेनु मँझारन।
पाहन हौं तु वही गिरि को,
जु धर्यौ कर छत्र पुरन्दर धारन।

जौ खग हौं तु बसेरा करौं,
मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।

11

मानते हैं जो कला के अर्थ ही,
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।

12

मुझको महामहत्व मिला,
स्वयं त्याग का तत्व मिला।
माँ! तुम तनिक कृपा कर दो,
बना रहे वह, यह वर दो!

13

मेरी यही महामति है,
पति ही पत्नी की गति है।

14

मुझको यह प्यारा और इसे तुम प्यारे,
मेरे दुगुने प्रिय, रहो न मुझसे न्यारे।

15

मत की स्वतन्त्रता; विशेषता आर्यों की,
निज मत के ही अनुसार, क्रिया कार्यों की।

16

मानस-मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप।

17

मूल शक्ति माँ, तुम्हीं सुयश के इस उपवन की।
फल, सिर पर ले धूल, दिए तुमने जो मीठे।
उनके आगे हुए, सुधा के घट भी सीठे।

18

मन ही के माप से, मनुष्य बड़ा छोटा है,
और अनुपात से उसी के खरा-खोटा है।

19

मधुर बनाता सब वस्तुओं को नाता है,
भाता वही उसको, जहाँ जो जन्म पाता है।

20

मेरे दुख में भरा विश्वसुख,
क्यों न भरूँ फिर मैं हामी,
बुद्धं शरणं, धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि।

21

माता, पिता, आदिक भले ही,
और निज जन हों सभी,
पति के बिना पत्नी सनाथा,
हो नहीं सकती कभी।

22

मेरी भूमि तो है, पुण्यभूमि, वह भारती,
सौ नक्षत्रलोक करें, आके आप आरती।

~ 23 ~

मूल्य रखती है क्षमा ही,
सुलभ है अपराध।

~ 24 ~

मेरी भवबाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँईं परे, स्याम हरित दुति होय।।

~ 25 ~

मोर मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानक मो मन बसो, सदा बिहारीलाल।

~ 26 ~

मोहनि मूरति स्याम की, अति अद्‌भुत गति जोय।
बसति सुचित अन्तर तऊ, प्रतिबिंबित जग होय।।

~ 27 ~

मेरी जाँ न रहे, मेरा सर न रहे, सामाँ न रहे, न यह साज रहे।
फ़कत हिन्द मेरा आज़ाद रहे, मेरी माता के सर पर ताज रहे।

~ 28 ~

मरने को जग जीता है!
रिसता है जो रन्ध्रपूर्ण घट,
भरा हुआ भी रीता है।

~ 29 ~

मैं त्रिविध-दुख-विनिवृत्ति-हेतु,
बाँधूँ अपना पुरुषार्थ सेतु;
सर्वत्र उड़े कल्याण-केतु,
तब है मेरा सिद्धार्थ नाम!

~ 30 ~

"माँ, कह एक कहानी।"

"बेटा, समझ लिया क्या तूने,

मुझको अपनी नानी?"

~ 31 ~

मधुर बनाता सब वस्तुओं को नाता है,

भाता वहीं उसको, जहाँ जो जन्म पाता है?

~ 32 ~

माँ, क्या सब ओर होगा, अपना ही अपना?

तब तो उचित ही है, तात का यों तपना?

~ 33 ~

मरने से बढ़कर यह जीना।

अप्रिय आशंकाएँ करना, भय खाना, हा! आँसू पीना!

~ 34 ~

मैं ढूँढ़ता तुझे था, जब कुंज और वन में,

तू खोजता मुझे था, तब दीन के वतन में।

तू आह बन किसी की, मुझको पुकारता था।

मैं था तुझे बुलाता, संगीत में, भजन में।

~ 35 ~

मानते हैं जो कला के अर्थ ही,

स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।

36

"मेरा राम न वन जावे, यहीं कहीं रहने पावे।
उनके पैर पड़ूँगी मैं, कहकर यही अड़ूँगी मैं।
भरत राज्य की जड़ न हिले, मुझे राम की भीख मिले!"

37

मेरी यही महामति है, पति ही पत्नी की गति है।

38

मुनि-रक्षक सब करो, विपिन में वास तुम।
मेटो तप के विघ्न और सब त्रास तुम।
हरो भूमि का भार, भाग्य से लभ्य तुम,
करो आर्य-सम वन्यचरों को सभ्य तुम।

39

माना आर्यी, सभी भाग्य का भोग है।
किन्तु भाग्य भी पूर्वकर्म का योग है।

40

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं,
जो विवश, विकल, बलहीन, दीन, शापित हैं।
मैं आया, जिसमें बनी रहे मर्यादा,
बच जाय प्रलय से, मिटै न जीवन सादा।
सुख देने आया, दुख झेलने आया।
मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया।
मैं राज्य भोगने नहीं, भुगाने आया,

हंसों को मुक्ता-मुक्ति चुगाने आया।
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

41

मानस मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाप।
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप।

42

मिथिला मेरा मूल है, और अयोध्या फूल।
चित्रकूल को क्या कहूँ, रह जाती हूँ भूल।

43

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुवाँ तौ दुहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।

44

माली आवत देख कर, कलियाँ करें पुकार।
फूली फूली चुन लिए, काल्हि हमारी बार।।

45

मेरी आँखों की पुतली में,
तू बनकर प्राण समा जा रे!
जिससे कनकन में स्पंदन हो,
मन में मलयानिल चन्दन हो,
करुणा का नव अभिनंदन हो,
वह जीवन-गीत सुना जा रे!

46

मज़हब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना।
मालूम क्या किसी को, दर्दे निहाँ हमारा।

47

मधुमय वसंत जीवन-वन के,
बह अंतरिक्ष की लहरों में,
कब आए थे तुम चुपके से,
रजनी के पिछले प्रहरों में।
क्या तुम्हें देखकर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी!
उस नीरवता में अलसाई,
कलियों ने आँखें खोली थीं!

48

मैं जभी तोलने का करती, उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।
भुजलता फँसाकर नर-तरु से, झूले सी झोंके खाती हूँ।

49

मानस-भवन में आर्यजन, जिसकी उतारें आरती।
भगवान भारतवर्ष में, गूँजे हमारी भारती।।

50

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं।
उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं।।

51

माया मरे न मन मरे, मर मर गए सरीर।
आशा, तृष्णा न मरे, कह गए दास कबीर।

❧ 52 ❧

माँगन मरन समान है, मत कोई माँगो भीख।
माँगन तें मरना भला, यह सतुगुरु की सीख।

❧ 53 ❧

मरने को हैं सभी,
धर्म्म मरकर भी पालो।

❧ 54 ❧

मेरा मन है, मैं कंदमूल फल खाऊँ,
जीवन को भोजनलक्ष कभी न बनाऊँ।

❧ 55 ❧

माटी खुदी करें दी यार।
माटी जोड़ा, माटी घोड़ा, माटी दा असवार।।
माटी माटी नूँ मारन लागी, माटी दे हथियार।
जिस माटी पर बहती माटी, तिस माटी हंकार।।
माटी बाग, बगीचा माटी, माटी दी गुलज़ार।
माटी माटी नूँ देखण आई, है माटी दी बहार।।
हँस-खेल फिर माटी होई, पौंदी पाँव पसार।
बुल्लेशाह बुझारत बूझी, लाह सिरों भों मार।

❧ 56 ❧

मुकुट की चटक, लटक बिंब कुंडल की,
भौंह की मटक नैकु, आँखिन देखाउ रे!
ए रे बनवारी, बलिहारी जाऊँ तेरी, मेरी
गैल किन आय, नैकु गायन चराउ रे!

'आदलि' सुजान रूप गुन के निधान कान्ह,
बाँसुरी बजाय तन तपन बुझाउ रे!
नंद के किसोर, चितचोर, मोर पंखबारे,
बंसीवारे साँवरे पियारे, इत आउ रे!

57

मानव जीवन के विकास की,
अरिनि अरी तू।
निशाचरी-सी हाय!
हमारे पिंड परी तू।।
अबतक कितने देश,
न जाने तूने खाए।
तेरा भरा न पेट,
घूमती है मुँह बाए।।
धनी-रंक, विद्वान्-मूर्ख,
कोई कब छोड़े?
तेरे वश हो सभी,
घूमते खीस निपोड़े।
कुटिल चाल चल चुकी बहुत,
अब दूर निकल तू।
है 'त्रिशूल' का वार,
अरी निशिचरी सँभल तू।

य

1

यदि चाहो भवनिधि तरन, छोड़ दूसरों की सरन।
करो पोतवत हरि चरन, वे ही हैं सब दुख हरन।।

2

यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा।
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं, रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां।
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्।

3

या लकुटी अरु कामरिया पर,
राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौंनिधि को सुख,
नन्द की गाय चराय बिसारौं।
'रसखानि' कबौं इन नैननि तें,
ब्रज के बन, बाग, तड़ाग निहारौं।
कोटिकहू कल धौत के धाम,
करील के कुंजन ऊपर वारौं।

4

यह न रहीम सराहिये, देन लेन की रीति।
प्रानन बाजी राखिये, हार होय कै जीति।

5

यदि न आज वन जाऊँ मैं,
किस पर हाथ उठाऊँ मैं?
पूज्य पिता या माता पर?
या कि भरत से भ्राता पर?
और किसलिए? राज्य मिले?
है जो तृण-सा त्याज्य, मिले

6

यह भ्रातृ-स्नेह न ऊना हो,
लोगों के लिए नमूना हो।

7

युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
रघुकुल में भी थी, एक अभागिन रानी।
निज जन्म-जन्म में, सुने जीव यह मेरा,
धिक्कार! उसे था महास्वार्थ ने घेरा।

8

यह देव दुर्लभ, प्रेममय, मुझको मिला प्रिय वर्ग है,
मेरे लिए संसार ही, नन्दन विपिन है, स्वर्ग है।

9

यदि मेरा नर, आज कहीं नारायण होता,
देख न सकता कभी, किसी को, वह यों रोता।
चुप हो, चुप हो, न रो, न रो, ऐसे ओ माई!
तेरे बच्चे हुए आज मेरे दो भाई!
गाएँ, भैंसें, तीन-तीन हैं घर पर मेरे,
एक, एक की दूध पियें, हम तीनों मेरे!

10

यदि खलों के साथ, निज सौजन्य खोते,
तो उन्हीं जैसे स्वयं, क्या हम न होते?

11

यदि सर्वहितसाधन रहे,
अपवर्ग फिर क्यों चाहिए?
तनु है यहीं तक, क्यों न उससे,
लोग पूरा काम लें?
जब काल आवे, सहज गति से,
शान्ति से, विश्राम लें!

12

यह तन सोने को न मिला,
जीवन खोने को न मिला,
आयु गँवाना उचित नहीं,
रहना शुभ, संकुचित नहीं।

13

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यौं-त्यौं उज्जलु होय।

14

यह भी पता नहीं कब किसका, समय कहाँ आ बीता है?
विष का ही परिणाम निकलता, कोई रस क्या पीता है?

15

यह जीवन भी यशोधरा का अंग हुआ,
हाय! मरण भी आज न मेरे संग हुआ!

सखि, वह था क्या सभी स्वप्न, जो भंग हुआ?
मेरा रस क्या हुआ और क्या रंग हुआ?

16

यशोधरा के भूरि भाग्य पर, ईर्ष्या करनेवाली,
तरस न खाओ कोई उस पर, आओ भोली-भाली!
तुम्हें न सहना पड़ा दुख यह, मुझे यही सुख आली!
वधू-वंश की लाज दैव ने, आज मुझी पर डाली।
बस जातीय सहानुभूति ही, मुझ पर रहे तुम्हारी।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी!

17

यह छोटा-सा छौना!
कितना उज्ज्वल, कैसा कोमल, क्या ही मधुर-सलौना!
क्यों न हँसूँ-रोऊँ-गाऊँ मैं, लगा मुझे यह टौना।
आर्यपुत्र, आओ, सचमुच मैं दूँगी चंद-खिलौना!

18

यह प्रभात या रात है, घोर तिमिर के साथ।
नाथ, कहाँ हो हाय तुम? मैं अदृष्ट के हाथ।

19

यही डीठ लगने के लच्छिन-छूटे खाना-पीना,
कभी काँपना, कभी पसीना, जैसे तैसे जीना!
डीठ लगी तब स्वयं तुझे ही, तू है सुध बुध हीना,
तू ही लगा डिठौना, जिसको काँटा बना बिछौना।
कैसी डीठ? कहाँ का टौना?

20

यदि उमंग भरता न अद्रिके ओ तू अन्तर्दाह,
तो कल कलकर, कहाँ निकलता, निर्मल सलिल-प्रवाह?
सुलभकर सबको मज्जन पान।
रुदन का हँसना ही तो गान।

21

यदि हममें अपना नियम और शम-दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है।

22

ये चन्द्र-सूर्य निर्वाण नहीं पाते हैं,
ओझल हो होकर हमें दृष्टि आते हैं,
झोंके समीर के झूम-झूम जाते हैं,
जा जाकर नीरद नया नीर लाते हैं,
तो क्यों जा जाकर लौट न मैं भी आऊँ?
कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

23

यदि वे चल आए हैं इतना,
तो दो पद उनको है कितना?
क्या भारी वह, मुझको जितना?
पीठ उन्होंने फेरी।
रे मन, आज परीक्षा तेरी।

24

युद्ध जीतना जो चाहते हैं, तुमसे वैर बढ़ाकर,
जीवित रहने की इच्छा वे, करते हैं विष खाकर।

25

यह प्रेम को पंथ करार है री,
तलवार की धार पै धावनो है।

26

यह भ्रातृ-स्नेह न ऊना हो,
लोगों के लिए नमूना हो।

27

युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी,
'रघुकुल में भी थी, एक अभागिन रानी।'
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा,
'धिक्कार! उसे था महास्वार्थ ने घेरा।'

28

ये, जो फूलों के चीरों में चमचमा रहीं,
मधुमुखी इन्द्रजाया की सहचरियाँ होंगी,
ये, जो यौवन की धूम मचाए फिरती हैं,
भूतल पर भटकी हुई इंद्रपरियाँ होंगी।

29

यह सुख कैसा शासन का! शासन रे मानव-मन का!
गिरि-भार बना सा तिनका, यह घटाटोप दो दिन का,
फिर रवि-शशि-किरणों का प्रसंग!

30

यह महादंभ का दानव, पीकर अनंग का आसव,
कर चुका महाभीषण रव़, सुख दे प्राणी को मानव,
तज विजय-पराजय का कुढंग।

31

यूनानो, मिस्त्रो, रूमा, सब मिट गए जहाँ से,
अब तक मग़र है बाकी, नामोनिशाँ हमारा।

32

यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म रंगस्थल है,
है परम्परा लग रही यहाँ,
ठहरा, जिसमें, जितना बल है।

33

यह अभिनव मानव प्रजा-सृष्टि!
द्वयता में लगी निरन्तर ही, वर्णों की करती रहे वृष्टि!

34

यह सच है मैंने ईश्वर को देखा नहीं कहीं,
पर वह जहाँ नहीं हो, ऐसी कोई जगह नहीं।
(निरंकार देव 'सेवक')

35

यारो सुनो, ये दधि के लुटैया का बालपन,
औ मधुपुरी नगर के बसैया का बालपन।
मोहन सरूप नृत्य-करैया का बालपन,
बन बन के ग्वाल गौवें-चरैया का बालपन।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन।।

र

1

रहिमन अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेहिं।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद प्रकटेइ।

2

रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर, लबार।
जो पत राखनहार है, माखन चाखनहार।।

3

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।
टूटे से फिर न मिले, मिले गाँठ पड़ि जाय।।

4

'रहिमन' अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गंभीर।
बागन बिच-बिच देखियत, सेंहुड़, कुंज, करीर।।

5

रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर।।

6

'रहिमन' निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय।।

7

'रहिमन' देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुईं, कहा करै तरवारि।

8

रहिमन निज सम्पति बिना, कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रबि सकै बचाय।।

9

'रहिमन' पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून।।

10

'रहिमन' प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन।।

11

'रहिमन' मनहिं लगाइकै, देखिए लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय।।

12

'रहिमन' लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत, पय पिअतहूँ, साँप सहज धरि खाय।।

13

'रहिमन' ने नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनतें पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।।

14

'रहिमन' मोहिं न सुहाय, अमीं पिआवै मान बिनु।
बरु बिष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो।।

15

राज्य है प्रिये, भोग या भार?
बड़े के लिए बड़ा ही दंड,
प्रजा की थाती रहे अखण्ड।

16

राजा हमने राम, तुम्हीं को है चुना,
करो न तुम यों हाय! लोकमत अनुसना।
जाओ, यदि जा सको, रौंद हमको यहाँ,
यों कह, पथ में लेट गए, बहुजन वहाँ।।

17

राम, तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाए, सहज संभाव्य है।

18

राज्य को यदि हम बना लें भोग,
तो बनेगा वह प्रजा का रोग।

19

राज्य में दायित्व का ही भार,
सब प्रजा का वह व्यवस्थागार,
वह प्रलोभन हो, किसी के हेतु,
तो उचित है, क्रांति का ही केतु।

20

रखते न अपनी आप, उतनी,
चित्त में चिन्ता कभी।

निज प्रियजनों का ध्यान जितना,
श्रेष्ठ जन रखते सभी।

21

रहे हृदय की शुद्धि हमारी,
सखी संगिनी, बुद्धि हमारी।
भीति छोड़कर, प्रीति-रीति रख,
आओ नीति निबाहें,
हम मनुष्य होकर क्या चाहें?

22

राजपद ही क्यों न अब हट जाए?
लोकभय का मूल ही कट जाए?
कर सकें कोई न दर्प, न दम्भ,
सब जगत् में हो नया आरम्भ।
विगत हों नरपति, रहें नर मात्र,
और जो जिस कार्य के हों पात्र,
वे रहें उस पर समान नियुक्त,
सब जियें ज्यों, एक हो कुल मुक्त।

23

राम, हमारे राम, तुम्हारे बने रहें हम,
जीवन के संघर्ष, हर्ष के संग सहें हम।
प्रभो! मुक्ति दो हमें, हाय? किस भाँति कहें हम?
बँधे गुणों से रहें, कहीं भी क्यों न बहें हम?

24

राम, तुम्हारे इसी धाम में,
नाम-रूप-गुण-लीला-लाभ;
इसी देश में हमें जन्म दो,
लो, प्रणाम, हे नीरजनाम।
धन्य हमारा भूमिभार भी,
जिससे तुम अवतार धरो;
भुक्ति-मुक्ति माँगें क्या तुमसे,
हमें भक्ति दो ओ अमिताभ!

25

रिक्त मात्र है, क्या सब भीतर,
बाहर भरा-भरा?
कुछ न किया यह सूना भव भी,
यदि मैंने न तरा?

26

रुदन का हँसना ही तो गान।
गा गाकर रोती है मेरी हृत्ततन्त्री की तान।

27

राधा-को तुम हो, इत आए कहाँ?
श्रीकृष्ण-घनश्याम।
राधा-हो तो कितहूँ बरसो।

28

रस से काव्य, काव्य से वाणी, वाणी से विद्वज्जन।
विद्वज्जन से सदा सभा का, बढ़ता है शोभा-धन।

29

राम से सुत को भी वनवास,
सत्य है यह, अथवा परिहास?

30

राज्य को यदि हम बना लें भोग,
तो बनेगा वह प्रजा का रोग।

31

रोकर रज में लोटो न भरत, ओ भाई,
यह छाती ठंडी करो, सुमुख सुखदाई।
मानस के मोती यों न बिखेरो, आओ,
उपहार रूप यह हार मुझे पहनाओ।

32

रस हैं बहुत, परन्तु सखि, विष है विषम प्रयोग।
बिना प्रयोक्ता के हुए, यहाँ भोग भी रोग।

33

रितु बसंत जाचक भया, हरषि दिया द्रुम पात।
तातें नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात।।

34

रे! रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग-धीर!
पर फिरा हमें गांडीव, गदा, लौटा दे अर्जुन, भीम वीर!
कह दे शंकर से आज करें, वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार?
सारे भारत में गूँज उठे, 'हर हर बम' का फिर महोच्चार?

35

रजनी की लाज समेटो तो,
कलरव से उठकर भेटों तो,
अरुणांचल में चल रही बात?
अब जागो जीवन के प्रभात?

36

राम-सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटीं।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर, जोगिनि जूटीं।।
श्रोनित छींट-छटानि जटे, तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी।
मानो मरक्कत सैल-बिसाल में, फैलि चलीं, बर बीरबहूटीं।।

37

राष्ट्र से तुमने कहा,
"स्वाधीनता का मोल जानो।"
किस तरह स्वच्छंदता की गति नियंत्रित हो सकेगी,
यदि नहीं अधिकार को, कर्तव्य से तुम तोल जानो।

38

रूढ़ियों को पालना ही, मर्म भोलेजन समझते।
मर्म बतला धर्म का, सद्धर्म को दी जान तूने।

ल

1

लक्ष्मण तू बड़भागी है, जो अग्रज अनुरागी है।
मन ये हों, तन तू, वन में, धन ये हों, जन तू वन में।

2

ले जन्म क्षणभंगुर जगत् में, कौन मरता है नहीं?
पर है उचित मरना, जहाँ पर, वीर मरते हैं वहीं।

3

लाख विचार व्यर्थ होंगे, यदि न हो एक आचार।
मन से नहीं, किन्तु तन से ही जाना होगा पार।

4

लेंगे अनुकूल एक वस्तु हम जो जहाँ,
लेनी ही पड़ेगी, प्रतिकूल दूसरी वहाँ।
जानना ही होगी हमें, दोनों का छिपा रहस्य।
स्वारस्यार्थ रखना पड़ेगा सदा सामंजस्य।

5

लज्जा ललनाओं की भूषा,
ऊषा की ज्यों अरुणाई।

6

लाली बन सरल कपोलों में,
आँखों में अंजन सी लगती।

कुंचित अलकों सी घुँघराली,
मन की मरोर बनकर जगती।

7

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।

8

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं अब नाथ।
अस्थि चर्ममय देह मम, तासों ऐसी प्रीति।
होती जो श्रीराम सूँ, होती न तो भवभीति।।

9

लाडू, पेड़ा, लापसी, पूजा चढ़े अपार।
पूजि पुजारी लै गया, दै मूरति के मुँह छार।

10

लिखन बैठि जाकी सबिहिं, गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।।

11

लता कंटकित हुई ध्यान से, ले कपोल की लाली,
फूल उठी है हाय! मान से, प्राण भरी हरियाली,
ओ मेरे बनमाली।

12

लक्ष्मण, तुम हो तपस्पही, मैं वन में भी रहा गृही।
वनवासी, हे निर्मोही, हुए वस्तुतः तुम दो ही।

13

लज्जित मेरे अंगार; तिलक-माला भी यदि ले आऊँ मैं,
किस भाँति उठूँ इतना ऊपर, मस्तक कैसे छू पाऊँ मैं?
ग्रीवा तक हाथ न जा सकते, उँगलियाँ न छू सकतीं ललाट,
वामन की पूजा किस प्रकार, पहुँचे तुम तक मानव विराट।

14

ले चल वहाँ भुलावा देकर,
मेरे नाविक धीरे-धीरे।

15

लूट रहे थे जिसे बटमार,
खुली गठरी मरजाद की बाँधी।
होश उड़ा दिए दंभियों के,
चली ऐसी भयंकर क्रांति की आँधी।
बाँध नहीं सकी जेल जिन्हें,
उलटे जिन्होंने परतंत्रता फाँदी।
भारत भूमि का भार उतारने के लिए,
है अवतार ही गाँधी।

(अभिराम शर्मा)

1

वह शर इधर गांडीव गुण से, भिन्न जैसे ही हुआ।
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर, छिन्न वैसे ही हुआ।

2

वह प्रीत नहिं, रीति वह, नाहिं पाछिलो हेत।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत।।

3

वीर न अपना देते हैं,
न वे और का लेते हैं।

4

वृथा क्षोभ का काम नहीं,
धर्म बड़ा, धन-धाम नहीं।

5

विरह रुदन में गया, मिलन में भी मैं रोऊँ,
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, पदरज धोऊँ।
जब थी, तब थी आलि, उर्मिला उनकी रानी,
वह बरसों की बात, आज हो गई पुरानी।
अब तो केवल रहूँ, सदा, स्वामी की दासी,
मैं शासन की नहीं, आज सेवा की प्यासी।

6

वधू सदा मैं अपने वर की,
पर क्या पूर्ति वासना भर की?
सावधान! हाँ, निज कुलधर की,
जननी मुझको जानो।
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

7

विघ्नों में विचरते हैं, डर सकते हैं हम?
नर हैं, अमर नहीं, मर सकते हैं हम।

8

वह शासन है स्वयं कलंक,
जिसमें जन हों, दिन-दिन रंक।
भूखों मरें, न पावें वस्त्र,
हो जावें निर्बल, निःशस्त्र।

9

वे न यहाँ नागर बड़े, जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गँवई गाँव गुलाब।।

10

विष्णु-चक्र का चक्र निराला,
शक्ति-खड्ग का हत्था आला,
चमका चरखा शत्रु-दलन को, मानो काल-कुठार।

(राधावल्लभ पांडेय 'बंधु')

11

विहग-समान यदि अम्ब पंख पाता मैं,
एक ही उड़ान में तो ऊँचे चढ़ जाता मैं।
मंडल बनाकर मैं घूमता गगन में,
और देख लेता पिता बैठे किस वन में।
कहता मैं-तात, उठो, घर चलो, अब तो;
चौंककर अम्ब, मुझे देखते वे तब तो।
कहते, "तू कौन है?" तो नाम बतलाता मैं,
और सीधा मार्ग दिखा, शीघ्र उन्हें लाता मैं।
मेरी बात मानते हैं, मान्य पितामह भी,
मानते अवश्य, उसे टालते न वह भी।
किन्तु बिना पंखों के विचार सब-रीते हैं,
हाय! पक्षियों से भी मनुष्य गए बीते हैं।

12

वह पाण्डुवंश प्रदीप यों शोभित हुआ उस काल में,
सुन्दर सुमन ज्यों पड़ गया हो, कंटकों के जाल में।

13

वीर न अपना देते हैं, न वे और का लेते हैं।
वीरों की जननी हम हैं, भिक्षा-मृत्यु हमें सम हैं।

14

वृथा क्षोभ का काम नहीं, धर्म बड़ा, धन-धाम नहीं।

15

वत्स राम! ऐसा ही हो, फल इसका कैसा ही हो?
लेकर उच्च हृदय इतना, नहीं हिमालय भी जितना।
तुमने मानव-जन्म लिया, धरणी-तल को धन्य किया!

बिरह-बिथा की कथा अकथ अथाह महा।
कहत बनै न जो प्रबीनि सुकबीनि सौं।
कहै रतनाकर बुझावन लगे ज्यों कान्ह,
ऊधौ कौं कहन हेत ब्रज-जुबतीनि सों,
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं,
प्रेम पर्‌यौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं,
नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सों,
रही सही सोऊ कहि दीन्ही हिचकीनि सों।

17

वेतनभोगिनी, विलासमयी यह देवपुरी,
ऊँघती कल्पनाओं से जिसका नाता है,
जिसको इतनी चिंता का भी अवकाश नहीं,
खाते हैं जो, वह अन्न, कौन उपजाता है?

18

वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा सरीर।

19

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे?
जब सावन-घन-सघन बरसते,
इन आँखों की छाया-भर थे।

20

व्यर्थ तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा, व्यर्थ तुम्हारा ज्ञान।
यदि पढ़ लिखकर भी न बने तुम, सच्चरित्र इन्सान।

21

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही,
उमड़ी कल थी, मिट आज चली।
मैं नीर भरी दुख की बदली!

22

वो असीरे दामे बला हूँ मैं,
जिसे साँस तक न आ सके।
वो कतीले खंजरे ज़ुल्म हूँ जो,
न आँख अपनी फिरा सके।।
मेरा हिन्दूकुश हुआ हिन्दूकुश,
ये हिमालिया है दिवालिया।
मेरी गंगा–जमुना उतर गईं,
बस इतनी हैं कि नहा सके।।
मेरे बच्चे भीख हैं माँगते,
उनको टुकड़ा रोटी का कौन दे?
जहाँ जायें कहें 'परे–परे',
कोई पास तक न बिठा सके।।
मेरे कोहेनूर का क्या हुआ,
उसे टुकड़े–टुकड़े ही कर दिया।
उसे ख़ाक में ही मिला दिया,
नहीं ऐसा कोई कि ला सके।। (अशफ़ाक)

श-ष

1

श्रम करो, स्वेद जल-स्वास्थ्य-मूल में डालो,
पर तुम यति का भी नियम, स्वगति में पालो।

2

शुभे, धन्य झंकार है धाम में,
रहे, किन्तु टंकार संग्राम में।
इसी हेतु है जन्म टंकार का,
न टूटे कभी तार, झंकार का।

3

शंकाएँ हैं जहाँ, वहीं वीरों की मति है।
आशंकाएँ जहाँ, वही वीरों की गति है।

4

शोभित ही रहता है शोभन,
रख ले कोई वेष।
दिया समान उन्होंने सबको आशा का संदेश।

5

शोक के समान हम हर्ष में भी रोते हैं,
अश्रुतीर्थ में ही, सुख-दुख एक होते हैं।

6

शहीदों की चिताओं पर, जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरनेवालों का, यही बाकी निशां होगा।

7

शेष की पूर्ति यही क्या आज?
भिक्षुक बनकर घर लौटे हैं, कपिलनगर नरराज!

8

शोभित होता है सूर्य, अपने प्रताप से।
लसता है सूर, निज धनुष और बाण से।

9

श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे।
सब शोक अपना भूलकर, करतल-युगल मलने लगे।
मुख बाल-रवि सम, लाल होकर, ज्वाल-सा बोधित हुआ,
प्रलयार्थ उनके मिस वहाँ क्या, काल ही क्रोधित हुआ?

10

शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग-जल का,
यह व्यर्थ साँस चल-चलकर, करती है काम अनिल का।

11

शक्ति-शक्ति, शिव-शक्ति-जय, जगत्-ज्योति-जगदम्ब!
आरत-भारत आर्ति को, क्यों न हरति अविलम्ब!

(वियोगी हरि)

12

षड्ऋतुओं का शृंगार,
कुसुमित कानन में नीरव पद-संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार,
व्यथा की भूली हुई कथा है, उसका एक स्वप्न अथवा है।

13

श्रम-विश्राम क्षितिज बेला से,
जहाँ सृजन करते मेला से,
अमर जागरण उषा नयन से,
बिखराती हो ज्योति घनी रे!

14

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उसका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय।

15

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन,
हरण भव-भय दारुणं।
नवकंज लोचन, कंजमुख, करकंज, पद कंजारुणम्।

16

श्रुति सम्मत हरि भक्ति-पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक।।

17

शान्ताकारं भुजगशयनं, पद्मनाभं सुरेशम्।
विश्वाधारं गगनसदृशं, मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं, योगिभिर्ध्यानगम्यम्।
वन्देविष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्।

18

शिशु पलते हैं प्रेम से ही, नहीं हेम से।

स

1

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा।
जिमि सद्‌गुन सज्जन पहिं आवा।।

2

सरिता जल जलनिधि महुँ जाई।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।।

3

सिंधु तर्‌यौ उनको बनरा, तुम पै धनुरेख गई न तरी।
बांदर बाँधत सो न बँध्यो, उन बारिधि बाँधि कै बाट करी।
श्री रघुनाथ प्रताप की बात, तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलहु तूलहु पूँछ जरी न, जरी जरि लंक जराइ जरी।

4

सब कोऊ सबसों करें, राम जुहार सलाम।
हित अनहित तब जानिये, जा दिन अटके काम।।

5

स्वर्ग से भी आज भूतल बढ़ गया,
भाग्य-भास्कर उदयगिरि पर चढ़ गया।
हो गया निर्गुण-सगुण साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।

6

स्वर्ग की तुलना उचित ही हैं, यहाँ,
किन्तु सुरसरिता कहाँ, सरयू कहाँ?
वह मरों को मात्र पार उतारती,
यह यही से जीवितों को तारती।

7

सत्य से ही स्थिर है संसार,
सत्य ही सब धर्मों का सार।
राज्य ही नहीं, प्राण, परिवार; सत्य पर सकता हूँ सब वार।

8

स्वर्गोपरि साकेत, राम का धाम तू,
रक्षित रख निज उचित अयोध्या नाम तू।
राज्य जाय, मैं आप चला जाऊँ कहीं,
आऊँ अथवा लौट यहाँ आऊँ नहीं,
रामचन्द्र, भवभूमि अयोध्या का सदा,
और अयोध्या रामचन्द्र की सर्वदा।

9

सब गया, हाय! आशा न गई,
आश, निष्फल भी बनी रहो,
तुम हो हीरे की कनी अहो!

10

सहमरण के धर्म से भी ज्येष्ठ,
आयु भर स्वामी-स्मरण है श्रेष्ठ।

11

सहनकर जीना कठिन है, देवि,
सहज मरना, एक दिन है, देवि!

12

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

13

सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है, जना भरत सा भाई।
पागल-सी, प्रभु के साथ सभा चिल्लाई,
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।

14

सह सकती हूँ, चिरनरक, सुनें सुविचारी।
पर मुझे स्वर्ग की दया, दंड से भारी।

15

संतुष्ट मुझे तुम देख रही हो वन में,
सुख धन-धरती में नहीं, किन्तु निज मन में।

16

सुख मिले, जहाँ पर जिन्हें, स्वाद वे चक्खें,
पर औरों का भी ध्यान, कृपा कर रक्खें।
शासन सब पर है, इसे न कोई भूले,
शासक पर भी, वह भी न फूलकर ऊले।

सखि, वे मुझसे कहकर जाते!
कह, तो क्या मुझको वे अपनी,
पथ-बाधा ही पाते?
मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।

18

सुजला अब भी भूमि हमारी,
चलो, करें उद्योग।
सुफला उसे बना लें मिलकर,
समभोगी हम लोग।

19

सह्य किसे स्वाधिकार, दूसरे के बस में,
देना पड़ा हो वह, भले ही रस रस में।

20

स्वर्ग राज्य तो क्या, अपवर्ग भी है एक पण्य,
मूल्य गिन दे जो धनी, ले ले वह आप गण्य।

21

संकट तो संकट, परन्तु यह भय क्या?
दूसरा सृजन नहीं, मेरा एक लय क्या?
स्वर्ग से पतन किन्तु गोत्रिणी की गोद में,
और जिस जोन में जो, सो उसी में मोद में।

22

सफल करो निज मानवदेह,
यही देव या दानव-गेह।

23

सच्चा धन तो है बस धर्म।
जो हिन्दू का जीवन-मर्म।

24

साधन-धाम, मुक्ति का द्वार,
हिन्दू का स्वदेश संसार।
हिन्दू, यही तुम्हारा लक्ष,
रहे सदा, सर्वत्र समक्ष।

25

साधु-चरित सुभ चरित कपासू,
निरस, बिसद, गुनमय फल जासू।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा,
वंदनीय जेहिं जग जस पावा।

26

सघन कुंज, छाया सुखद, सीतल, मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर।।

27

स्वारथ, सुकृत न, स्रम वृथा, देखु बिहंग बिचारि।
बाज पराए पानि परि, तू पंछी हू न मारि।।

28

सरफ़रोशी की तमन्ना, अब हमारे दिल में है।
देखना है, ज़ोर कितना, बाजु-ए-क़ातिल में है।

29

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र-धर्म के नाते।

30

सखि, वसन्त से कहाँ गए वे,
मैं ऊष्मा-सी यहाँ रही।
मैंने ही क्या सहा, सभी ने,
मेरी बाधा-व्यथा सही।

31

सब भला उसका भुवन में, अंत जिसका भला,
जीव पहुँचेगा वहीं तो, वह जहाँ से चला।

32

संग तें जती, कुमंत्र तें राजा, मान तें ग्यान, पान तें लाजा,
प्रीति प्रनय बिनु, मद तें गुनी, नासहिं बेगि नीति अस सुनी।

33

सुनकर जयद्रथ का कथन, हरि को हँसी कुछ आ गई।
गंभीर श्यामल मेघ में, विद्युच्छटा-सी छा गई।

34

सोनित छींट छटानि जटे, तुलसी प्रभु सोहैं महाछवि छूटी।
मानो मरक्कत सैल बिसाल में, फैलि चलीं बर बीरबहूटी।

35

सीता-हरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहिहि दसानन आइ।

36

स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ,
किन्तु सुरसरिता कहाँ, सरयू कहाँ?
वह मरों को मात्र पार उतारती,
यह यहीं से जीवितों को तारती!

37

स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम है इसका उचित ही "ऊर्मिला।"

38

स्वर्गोपरि साकेत, राम का धाम तू,
रक्षित रख, निज उचित अयोध्या नाम तू।
राज्य जाय, मैं आप, चला जाऊँ कहीं,
आऊँ अथवा लौट यहाँ आऊँ नहीं।
रामचन्द्र भवभूमि अयोध्या का सदा,
और अयोध्या रामचन्द्र की सर्वदा।

39

सीता ने अपना भाग लिया,
पर इसने वह भी त्याग दिया।

गौरव का भी है भार यही,
उर्वी भी गुर्वी हुई मही।
नव वय में ही विश्लेष हुआ,
यौवन में ही यतिवेश हुआ।

40

सब गया, हाय! आशा न गई,
आशे, निष्फल भी बनी रहो,
तुम हो हीरे की कनी अहो!

41

सब ओर लाभ ही लाभ बोध-विनिमय में,
उत्साह मुझे है विविध वृत्त-संचय में,
तुम अर्द्धनग्न क्यों रहो अशेष समय में?
आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में।
निकले फूलों का रंग, ढंग से ताया,
मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

42

"सौ बार धन्य वह एक लाल की भाई,
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।"
पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई,
"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।"

43

सन्तुष्ट मुझे तुम देख रही हो वन में,
सुख धन-धरती में नहीं किन्तु निज मन में।

44

सुख दे सकते हैं तो दुखी जन ही मुझे, उन्हें यदि भेंटूँ ?
कोई नहीं यहाँ क्या, जिसका कोई अभाव मैं भी भेंटूँ ?

46

सफल है, उन्हीं घनों का घोष।
वंश-वंश को देते हैं जो वृद्धि, विभव, संतोष।

47

सबका पहुँचा काल तभी से जब उनकी,
आँखें रेशम पर बहुत अधिक ललचाई हैं।
रेशम के कोमल तार, क्लांतियों के धागे,
हैं बँधे उन्हीं से अंग यहाँ आज़ादी के,
दिल्लीवाले गा रहे बैठ निश्चिंत, मगन,
रेशमी महल में गीत खुरदरी खादी के।

48

सिंहों के लेंहड़े नहीं, हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साधु न चलें जमात।।

49

संसृति के विक्षत पग रे! यह चलती है डगमग रे!
अनुलेप सदृश तू लग रे? मृदु दल बिखेर इस मग रे!
कर चुके मधुर मधु पान भृंग।

50

सुमति कुमति सबके उर बसहीं, (रहहीं),
नाथ पुरान निगम अस कहहीं।
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना,
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।

51

सत्य मूल, सब सुकृत सुहाए।
बेद, पुरान, बिदित मनु गाए।

52

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो,
जीवन-धन इस जले जगत् को, वृन्दावन बन जाने दो।

53

सोच रहे थे, जीवन सुख है?
ना, यह विकट पहेली है।
भाग अरे मनु! इन्द्रजाल से,
कितनी व्यथा न झेली है?

54

सबकी सेवा न पराई,
वह अपनी सुख-संसृति है;
अपना ही अणु-अणु कण-कण,
द्वयता ही तो विस्मृति है।

55

सब भेदभाव भुलवाकर,
दुख-सुख को दृश्य बनाता;
मानव कह रे! 'यह मैं हूँ',
यह विश्व नीड़ बन जाता!

56

समरस थे जड़ या चेतन, सुंदर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखंड घना था।

57

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं, अबलानन दीख नहीं जब लौं।

58

ससुरारि पिआरि लगी जब तें, रिपुरूप कुटुंब भए तब तें।

59

सीस जटा उर बाहु बिसाल बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहें,
तून सरासन बान धरें तुलसी बनमारग में सुठि सोहैं।
आदर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं,
पूँछति ग्रामबधू सिय सों, कहौ, साँवरे से, सखि! रावरे को हैं।।

60

सच्चाई छिप नहीं सकती, बनावट के उसूलों से,
कि ख़ुशबू आ नहीं सकती, कागज़ के फूलों से।

61

सहृदय जिसे सुनकर द्रवित हों, चरित वैसा चाहिए।
अति भव्य भावों का नमूना और कैसा चाहिए?

62

सब मिल के यारो, कृष्ण मुरारी की बोलो जै।
गोबिंद-कुंज-छैल-बिहारी की बोलो जै।।
दधिचोर गोपीनाथ, बिहारी की बोलो जै।
तुम भी 'नज़ीर' कृष्ण मुरारी की बोलो जै।
ऐसा था बाँसुरी के बजैया का बालपन,
क्या-क्या कहूँ मैं कृष्ण-कन्हैया का बालपन।।

ह

1

हरित भूमि तृन-संकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें, लुप्त होहिं सदग्रंथ।।

2

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियौ पुनि दूर।

3

हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा, तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिए, कब, क्या, कहाँ?
व्यक्त करती है कला ही यह यहाँ।

4

हम परभाग नहीं लेंगी,
अपना त्याग नहीं देंगी।

5

हरो, भूमि का भार, भाग्य से लभ्य तुम,
करो आर्य-सम, वन्यचरों को सभ्य तुम।

6

हो गया पुण्य ही पाप मुझे,
दे रहा धर्म ही ताप मुझे।

7

हाँ, तब अनर्थ के बीज अर्थ बोता है,
जब एक वर्ग में मुष्टिबद्ध होता है।

8

है श्रद्धा पर ही श्राद्ध, न आडम्बर पर।

9

हम सब होंगे जहाँ, हमारा स्वर्ग वहीं है।

10

हाय, सखी, शृंगार? मुझे अब भी सोहेंगे?
क्या वस्त्रालंकार मात्र से वे मोहेंगे?
नहीं, नहीं, प्राणेश मुझी से छले न जावें,
जैसी हूँ मैं, नाथ मुझे वैसा ही पावें।
शूर्पणखा मैं नहीं-हाय, तू तो रोती है?
अरी, हृदय की प्रीति, हृदय पर ही होती है।

11

है यह भुवन ही इन्द्र-कानन,
कर्मवीरों के लिए।

12

होता जहाँ पर सौख्य है, दुख भी वहाँ अनिवार्य है।
करती प्रकृति अविराम अपना, नियमपूर्वक कार्य है।

13

हम परिवर्तमान नित्य नए हैं तभी,
ऊब ही उठेंगे, कभी एक स्थिति में सभी,

रहता प्रपूर्ण है, हमारा रंगमंच भी,
रुकता नहीं है, लोकनाट्य कभी रंच भी।

14

होगा वह क्या बड़ा जो विघ्नों से नहीं लड़ा?
यों तो सुखी, शांत वही, जो जड़ हुआ पड़ा।

15

हावभाव दिखला सकते हैं,
बातें भी गढ़ सकते हैं।
कहीं नाचने गानेवाले,
क्लीव, समर चढ़ सकते हैं?

16

हे नारायण, क्या और कहूँ,
तू निज नर मात्र, मुझे रखना,
क्या नहीं एक से दो अच्छे,
लीलारस रहे, जहाँ चखना।

17

होता नहीं बड़ा परिवर्तन,
दिए बिना बलिदान विशाल।
करके दग्ध आपको दीपक,
हरता है तब, मन का जाल।
दान महान् हमारा जितना,
होगा उतना ही प्रतिदान।

18

है अधिक गतिमय सुदर्शन,
चक्र से चरखा तुम्हारा।

19

हिमाद्रि तुंग-शृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वतन्त्रता पुकारती।

20

हिन्दी भाषा है, हिन्द देश की भाषा,
इसकी उन्नति है, देशोन्नति की आशा।

(लोचनप्रसाद पाण्डेय)

21

हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है।

22

हाय नाथ! इतने भूखे थे, धीरज रहा न और?
पर कब की प्यासी यह दासी,
बैठी हैं इस ठौर—
तुम्हारी अपनी लेकर लाज।
शेष की पूर्ति यही क्या आज?

23

हुए क्यों पुत्र तुम हे राम! मेरे?
यही हैं क्या पिता के काम मेरे?

24

है श्रद्धा पर ही श्राद्ध, न आडम्बर पर।

25

हा स्वामी! कहना था क्या-क्या,
कह न सकी, कर्मों का दोष!
पर जिसमें सन्तोष तुम्हें हो,
मुझे उसी में है संतोष।

26

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह!

27

हम अन्य न और कुटुम्बी,
हम केवल एक हमीं हैं।
तुम सब मेरे अवयव हो,
जिसमें कुछ नहीं कमी है।

28

हे परमेश्वर एक प्रार्थना, नित्य तुम्हारे चरणों में,
लग जाए तन, मन, धन मेरा, मातृभूमि की सेवा में।

29

हे प्राचि? आज तप तपकर, यह अस्त हुआ रवि तेरा,
कहता है विश्व कलपकर, "हा? कहाँ गया कवि मेरा?"

(विश्वकवि के देहांत पर : मै. श. गुप्त)

30

होता जहाँ उत्साह है, होती सफलता भी वहीं।

31

हित करना ही किसी जन का कठिन है,
सुलभ सभी के लिए, सबका अहित है।

32

हरि को हरि–जन अति ही पियारे।
हरि हरि–जन तें भेद न राखैं,
अपने सम करि डारैं।

33

है बहारे बाग दुनिया चंदरोज़, देख लो इसका तमाशा चंदरोज़।
ऐ मुसाफ़िर कूच का सामान कर, इस जहाँ में है बसेरा चंदरोज़।।
पूछा लुकमाँ से जिया तू कितने रोज़? दस्त हज़रत मल के बोला, चंदरोज़।
बादे मदफ़न क़ब्र में बोली कज़ा, अब यहाँ पै सोते रहना चंदरोज़।।
फिर तुम कहाँ औ मैं कहाँ ऐ दोस्तो! साथ है, मेरा तुम्हारा चंदरोज़।
क्यों सताते हो दिले बेजुर्म को, ज़ालिमों, है ये ज़माना चंदरोज़।
याद कर तू ऐ नज़ीर! कबरों के रोज़, ज़िंदगी का है भरोसा चंदरोज़।।

(नसीर)

34

हे जगत्राता, विश्व विधाता,
हे सुख–शांति–निकेतन हे!
प्रेम के सिन्धु, दीन के बन्धु,
दुख–दरिद्र–विनाशन है!

35

हिंसानल से शांत नहीं होता हिंसानल,
जो सबका है, वही हमारा भी चिरमंगल।

मिला हमें चिरसत्य आज यह नूतन होकर,
हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।

(सि. रा. श. गुप्त 'उन्मुक्त')

36

'हम किसी रोज़ ऐसे जागें, फिर नींद न आए'
इतना कहकर देश सो गया!
और जगत् के बटमारों के गुट,
जुटे हुए हैं इस कोशिश में नींद न खुलने पाए,
कभी इस सुप्त देश की,
सोए रहने की सुविधाएँ सब हाज़िर हैं,
अपना सोना बड़े काम का सिद्ध हो रहा है,
बेचारे गांधी का सपना बिद्ध हो रहा है!

(भ. प्र. मिश्र)

37

हटो यहाँ से विदेशी वस्त्रो,
न अब तुम्हारी है चाह हमको।
तुम्हीं से भारत हुआ है ग़ारत,
किया है तुमने तबाह हमको।।
कहाँ यहाँ की महीन मलमल,
पड़ा है ढाका में आज फाका।
बने निकम्मे जुलाहे कोरी,
मिला ये तुमसे पुरस्कार हमको।।

(शोभाराम धेनुसेवक)

क्ष

1

क्षत्राणियों के अर्थ भी, सबसे बड़ा गौरव यही,
सज्जित करें पति पुत्र को, रण के लिए जो आप ही।

2

क्षिति का छोर छू गई सहसा,
वह बिजली का कोर!
उजलती है जलती मुसकान,
रुदन का हँसना ही तो गान!

3

क्षमा करो सिद्धार्थ शाक्य की,
निर्दयता प्रिय जान।
मैत्री–करुणा–पूर्ण आज वह,
शुद्ध, बुद्ध भगवान।

4

क्षीण हुआ वन में, क्षुधा से मैं विशेष जब,
मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से।

5

क्षण इधर गई, क्षण उधर गई,
क्षण चढ़ी बाढ़-सी उतर गई,
थी प्रलय, चमकती जिधर गई,
क्षण शोर हो गया, किधर गई?

क्षण भीषण हलचल मचा मचा,
राणा कर की तलवार बढ़ी।

(श्यामनारायण पांडेय)

6

क्षण विशेष का मरण भला,
क्षण-क्षण के भय से।

7

क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल है।

8

क्षण-क्षण, पल-पल
खुद को देना,
यह जीवन का अर्थ है।
जितना अधिक दे रहा है जो,
उतना अधिक समर्थ है।

1

त्रिभुवनेश्वरी, त्रयनयनि, जय, त्रिशूलिनी अम्ब,
जन-त्रिताप-उपशमन में, क्यों अब करति विलम्ब ?

(वियोगी हरि)

2

त्रिगुणातीत फिरत तन त्यागी,
रीत जगत् से न्यारी।
ब्रह्मानन्द संतन की सोबत,
मिलत है प्रगट मुरारी।

3

त्रिदिक् विश्व, आलोक ब्रिन्दु भी,
तीन दिखाई पड़े अलग वे।
त्रिभुवन के प्रतिनिधि थे मानो,
वे अनमिल थे, किन्तु सजग थे।

1

ज्ञान-चौसर मंडी चौहटे, सुरत पासा सार।
या दुनिया में रची बाजी, जीत भावें हार।

2

ज्ञान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौ कब,
हरैं-हरैं पूँजी सब सरकि कछार मैं।

3

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की!
एक-दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।

4

ज्ञानी, कृतकर्मा, भक्त सभी,
ये जहाँ जाएँ, जय-जय ही है।

डॉ. सीता बिम्ब्रॉ

हिन्दी साहित्य और संगीत में गहन रुचि रखनेवाली डॉ. सीता बिम्ब्रॉ का जन्म 16, जून सन् 1937 में, लाहौर में हुआ। हिन्दी में एम. ए. दिल्ली विश्वविद्यालय से किया। तदनन्तर दिल्ली विश्वविद्यालय : सर शंकरलाल म्यूज़िक इंस्टीच्यूट से 'संगीत शिरोमणि' परीक्षा उत्तीर्ण की और प्रथम स्थान प्राप्त किया। स्व. पं. दिलीपचन्द्र वेदी जी तथा स्व. नसीर अहमद खाँ जी से संगीत-शिक्षा प्राप्त की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी से स्व. डॉ. प्रेमलता शर्मा (रीडर संगीत-विभाग) तथा स्व. आचार्य विनयमोहन शर्मा (हिन्दी विभागाध्यक्ष, कुरुक्षेत्र वि. वि.) के निर्देशन में, 'हिन्दी के निर्गुण संतकाव्य में संगीत तत्व' विषय में, पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की।

दि. वि. वि. के कमला नेहरू महाविद्यालय में, 31 वर्ष, अध्यापन-कार्य किया। पी. एच. डी. के बाद 'पोस्ट डॉक्ट्रल रिसर्च' की, विषय "मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में संगीत : परम्परा और आधुनिकतापरक दृष्टि।" स्वाधीनता सेनानी स्व. बाबा लालसिंह जी की सुपुत्री होने के कारण, उनके प्रथप्रदर्शन में 13 पुस्तकों की रचना की। रामायण-गायन द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति गौरव जागृत करना तथा आबालवृद्ध को चरखा सिखाकर उन्हें यथासंभव स्वावलम्बी बनाने में, संप्रति व्यस्तता।

लेखिका की अन्य पुस्तकें

1. खादी दर्शन	10.00 रु.
2. आस्था के स्वर (भाग-1)	2.00 रु.
3. आस्था के स्वर (भाग-2)	2.00 रु.
4. लहर पारदर्शिका	5.00 रु.
5. सप्तव्रत	2.00 रु.
6. छंद-प्रवेशिका	1.00 रु.
7. अलंकारों का चार्ट	2.00 रु.
8. रस-प्रवेशिका	5.00 रु.
9. भक्ति	8.00 रु.
10. कर्तव्य	20.00 रु.
11. नारी	10.00 रु.
12. संपूर्ण रामायण	20.00 रु.
13. सूक्ति-सुधा	5.00 रु.